# समकालीन भारत – 1950-1990
# (Contemporary India – 1950-1990)

## बी.ए. (प्रोग्राम) इतिहास

**सेमेस्टर-VII**

**DISCIPLINE SPECIFIC CORE COURSE (DSC)**

**COURSE CREDIT-4**

As per the UGCF - 2022 and National Education Policy 2020

# READING NOTES

# समकालीन भारत – 1950-1990

## अनुक्रम


| क्र.सं. | शीर्षक | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|
| इकाई-1 | संविधान का निर्माण : प्रमुख बहसें और संशोधन | 1-25 |
| इकाई-2 | राजनीति और समाज के प्रमुख रुझाान | 26-49 |
| इकाई-3 | 1980 और 1990 के दशकों के निर्णायक मोड़ | 50-70 |
| इकाई-4 | नया सार्वजनिक क्षेत्र (The New Public Sphere) | 71-91 |


Printed at: Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Plot 20/4, Site-IV, Industrial Area Sahibabad, Ghaziabad - 201 010 (1000 Copies) October 2026

## इकाई – 1

# संविधान का निर्माण : प्रमुख बहसें और संशोधन

## संरचना


1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 भारतीय संविधान का निर्माण

1.4 संविधान सभा

1.5 सामाजिक सहभागिता

1.6 संविधान सभा की प्रथम बैठक

1.7 संविधान सभा की कार्यप्रणाली

1.8 कार्य संचालन हेतु विभिन्न समितियों की नियुक्ति

1.9 प्रमुख समितियाँ और उनके अध्यक्ष

1.10 संविधान सभा के सदस्यों की दृष्टि और वैचारिक अवधारणाएँ

1.11 प्रारूप समिति की रिपोर्ट

- 1.11.1 संवैधानिक समितियों की रिपोर्टें
- 1.11.2 संविधान सभा की बहसें - सीएडी (CAD)
- 1.11.3 प्रारूप समिति
- 1.11.4 संविधान को अपनाया जाना

1.12 भारतीय संविधान की उद्घोषणा

1.13 भारतीय संविधान

1.14 भारत के संविधान की मूल विशेषताएँ

- 1.14.1 लिखित संविधान
- 1.14.2 स्वनिर्मित और अधिनियमित संविधान
- 1.14.3 संविधान की प्रस्तावना
- 1.14.4 भारत: एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य
  - 1.14.4.1 संप्रभु राज्य के रूप में भारत
  - 1.14.4.2 समाजवादी राज्य के रूप में भारत
  - 1.14.4.3 पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत
  - 1.14.4.4 लोकतंत्रात्मक राज्य के रूप में भारत
  - 1.14.4.5 गणराज्य के रूप में भारत
- 1.14.5 राज्यों का संघ

1.14.6 एकात्मक भावना वाली संघीय व्यवस्था
1.15 निष्कर्ष
1.16 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)
1.17 बहुविकल्पीय प्रश्नों (MCQs) के उत्तर
1.18 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री

## 1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अंत तक विद्यार्थी इस योग्य हो जाएगा कि वह–

- भारतीय संविधान के निर्माण की ओर ले जाने वाली ऐतिहासिक परिस्थितियों की व्याख्या कर सके।
- संविधान सभा की संरचना, कार्यप्रणाली और वैचारिक झुकावों का वर्णन कर सके।
- प्रमुख बहसों, विशेष रूप से भाषा, अल्पसंख्यक अधिकारों और संघवाद पर हुई बहसों का विश्लेषण कर सके।
- समितियों की रिपोर्टों से लेकर संविधान को अपनाए जाने तक की प्रक्रिया की रूपरेखा प्रस्तुत कर सके।
- भारत के संविधान की मूल विशेषताओं की पहचान कर उनकी व्याख्या कर सके।
- समकालीन भारत में संविधान के एक जीवंत दस्तावेज़ के रूप में महत्व का मूल्यांकन कर सके।

## 1.2 प्रस्तावना

भारत का संविधान देश का सर्वोच्च कानून है, जो शासन का ढाँचा, शक्तियों का वितरण और मौलिक अधिकारों का संरक्षण प्रदान करता है। यह एक अनूठे ऐतिहासिक क्षण की उपज है — भारत के स्वतंत्रता के लंबे संघर्ष की परिणति, विभाजन की त्रासदी, और एक लोकतांत्रिक, समावेशी तथा आधुनिक राष्ट्र-राज्य के निर्माण की आकांक्षा।

भारत में संविधान-निर्माण की प्रक्रिया निम्नलिखित बातों के लिए उल्लेखनीय थी–

- इसका स्वदेशी स्वरूप — भारतीयों द्वारा भारत के लिए तैयार किया गया।
- इसकी विचार-विमर्शात्मक प्रकृति — प्रत्येक खंड पर खुले रूप में बहस हुई।
- इसकी बहुलतावादी सहभागिता — यद्यपि इसमें कांग्रेस का वर्चस्व था, फिर भी इसमें अनुसूचित जातियों, जनजातियों, अल्पसंख्यकों और महिलाओं की आवाज़ें शामिल थीं।

संविधान सभा का कार्य केवल कानूनी प्रारूपण नहीं था; यह राष्ट्र-निर्माण की एक प्रक्रिया थी, जिसमें भारत के भविष्य के बारे में परस्पर प्रतिस्पर्धी दृष्टिकोणों का समाधान बहस, समझौते और संशोधन के माध्यम से किया गया।

## 1.3 भारतीय संविधान का निर्माण

भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 ने 1946 में पहले ही निर्वाचित संविधान सभा को सभी सीमाओं से मुक्त एक संप्रभु निकाय बना दिया। इसकी प्रथम बैठक में, अंतरिम अध्यक्ष के निर्वाचन और कार्य-संचालन के बुनियादी नियम तय करने के बाद, 13 दिसंबर 1946 को संविधान के लिए निम्नलिखित उद्देश्य प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया:

1. भारत को एक स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य घोषित करना और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान तैयार करना;

2. जिसमें वे सभी क्षेत्र, जो ब्रिटिश भारत का हिस्सा थे, वे क्षेत्र जो भारतीय रियासतों का निर्माण करते हैं, तथा भारत के ऐसे अन्य भाग जो ब्रिटिश भारत और रियासतों से बाहर हैं, साथ ही ऐसे अन्य क्षेत्र जो स्वतंत्र संप्रभु भारत में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं, इन सबका एक संघ होगा;

3. जिसमें उक्त क्षेत्र, चाहे अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ हों या संविधान सभा द्वारा निर्धारित अन्य सीमाओं के साथ और तत्पश्चात संविधान की विधि के अनुसार, स्वायत्त इकाइयों की स्थिति रखेंगे और उसे बनाए रखेंगे, अवशिष्ट शक्तियों सहित, तथा शासन और प्रशासन की वे सभी शक्तियाँ और कार्य करेंगे, सिवाय उन शक्तियों और कार्यों के जो संघ में निहित हैं या उसे सौंपे गए हैं, अथवा जो संघ में अंतर्निहित या निहितार्थ हैं या उससे उत्पन्न होते हैं; और

4. जिसमें संप्रभु स्वतंत्र भारत, उसके घटक भागों और शासन के अंगों की समस्त शक्ति और प्राधिकार जनता से व्युत्पन्न होंगे; और

5. जिसमें भारत के समस्त लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; प्रतिष्ठा, अवसर और विधि के समक्ष समता; तथा विधि और राजनीतिक नैतिकता के अधीन विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संघ बनाने और कार्य करने की स्वतंत्रता की गारंटी और सुरक्षा प्रदान की जाएगी; और

6. जिसमें अल्पसंख्यकों, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों तथा दलित और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जाएँगे; और

7. जिसके द्वारा गणराज्य के क्षेत्र की अखंडता तथा भूमि, समुद्र और आकाश पर उसके संप्रभु अधिकारों को न्याय और सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार बनाए रखा जाएगा; और

8. यह प्राचीन भूमि विश्व में अपना उचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करे तथा विश्व शांति और मानव-जाति के कल्याण के संवर्धन में अपना पूर्ण और स्वैच्छिक योगदान दे।

बाद में यह प्रस्ताव, संपूर्ण संविधान में प्रतिबिंबित होने के साथ-साथ, संविधान के शेष उपबंधों की प्रक्रिया से गुज़रने के बाद उसकी प्रस्तावना में विशेष प्रमुखता के साथ स्थापित हुआ।

अपने कार्य के कुशल और प्रभावी संचालन के लिए सभा ने अनेक समितियाँ नियुक्त कीं, जिनमें से डॉ. अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने संविधान का प्रारूप तैयार करने और 26

नवंबर 1949 को उसे अपनाए जाने तक सभा में उसका मार्गदर्शन करने का दायित्व निभाया। संविधान के कुछ उपबंध उसी दिन लागू हो गए, जबकि शेष संविधान 26 जनवरी 1950 से प्रभावी हुआ, जिसे संविधान के प्रारंभ की तिथि के रूप में भी निर्दिष्ट किया गया है।

### औपनिवेशिक विरासत

भारत सरकार अधिनियम, 1935 ने प्रशासनिक अनुभव तो प्रदान किया, लेकिन उसमें लोकतांत्रिक वैधता का अभाव था।

**कैबिनेट मिशन योजना (1946):** इसमें प्रांतीय विधानमंडलों द्वारा निर्वाचित संविधान सभा के गठन का प्रस्ताव किया गया, जिसमें रियासतों और अल्पसंख्यकों के लिए प्रतिनिधित्व की व्यवस्था थी।

**विभाजन (1947):** इससे सभा की सदस्य संख्या 389 से घटकर 299 रह गई तथा एकता, अल्पसंख्यक अधिकारों से जुड़ी चिंताएँ बढ़ गईं।

## 1.4 संविधान सभा

**तालिका 1:** 31 दिसंबर 1947 की स्थिति के अनुसार भारत की संविधान सभा की राज्यवार सदस्यता (ब्रिटिश प्रांत - 229)

| राज्य | सदस्यों की संख्या |
|---|---|
| मद्रास | 49 |
| बंबई | 21 |
| पश्चिम बंगाल | 19 |
| संयुक्त प्रांत | 55 |
| पूर्वी पंजाब | 12 |
| बिहार | 38 |
| मध्य प्रांत | 17 |
| असम | 8 |
| उड़ीसा | 9 |
| दिल्ली | 1 |
| अजमेर-मेरवाड़ा | 1 |
| कूर्ग | 1 |

**तालिका 2: रियासतें**

| राज्य | संख्या सदस्य |
|---|---|
| अलवर | 1 |
| बड़ौदा | 3 |
| भोपाल | 1 |
| बीकानेर | 1 |
| कोचीन | 1 |
| ग्वालियर | 4 |
| इंदौर | 1 |
| जयपुर | 3 |
| जोधपुर | 2 |
| कोल्हापुर | 1 |
| कोटा | 1 |
| मयूरभंज | 1 |
| मैसूर | 7 |
| पटियाला | 2 |
| रीवा | 2 |
| त्रावणकोर | 6 |
| उदयपुर | 2 |
| सिक्किम और कूचबिहार समूह | 1 |
| त्रिपुरा, मणिपुर और खासी राज्य समूह | 1 |
| उत्तर प्रदेश राज्य समूह | 1 |
| पूर्वी राजपूताना राज्य समूह | 3 |
| मध्य राज्य समूह (बुंदेलखंड और मालवा सहित [मूल पाठ में कोष्ठक अधूरा है] | 3 |
| पश्चिमी भारत राज्य समूह | 4 |
| गुजरात राज्य समूह | 2 |
| दक्कन और मद्रास राज्य समूह | 2 |

| | |
|---|---|
| पंजाब राज्य समूह | 3 |
| पंजाब राज्य समूह । | 4 |
| पूर्वी राज्य समूह ।। | 3 |
| अवशिष्ट राज्य समूह | 4 |

कैबिनेट मिशन द्वारा अनुशंसित कुल सदस्य संख्या 389 थी। विभाजन के बाद भारतीय संविधान सभा की संख्या 229 + 70 = 299 हो गई।

## 1.5 सामाजिक सहभागिता

यद्यपि सभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों का वर्चस्व था, फिर भी वह एकाश्म (एकरूप) निकाय नहीं थी। इसमें डॉ. बी.आर. अंबेडकर जैसे प्रमुख व्यक्ति, जयपाल सिंह मुंडा जैसे जनजातीय नेता, तथा हंसा मेहता, राजकुमारी अमृत कौर और दुर्गाबाई देशमुख जैसी महिला नेता शामिल थीं। धार्मिक अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व एंग्लो-इंडियन समुदाय के लिए फ्रैंक एंथनी तथा विभाजन के बाद भारत में रह गए मुसलमानों के लिए मोहम्मद सादुल्ला जैसे नेताओं के माध्यम से हुआ। यद्यपि अधिकांश सदस्य अंग्रेज़ी-शिक्षित अभिजात वर्ग के थे, फिर भी सभा ने भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक स्पेक्ट्रम के विभिन्न वर्गों की आवाज़ों को शामिल करने का सचेत प्रयास दर्शाया, भले ही कुछ वर्ग — विशेषकर ग्रामीण निर्धन और अनेक भाषाई अल्पसंख्यक — अल्प-प्रतिनिधित्व वाले रहे हों।

## 1.6 संविधान सभा की प्रथम बैठक

सभा की पहली बैठक 9 दिसंबर 1946 को नई दिल्ली में संविधान हॉल में हुई, जिसे अब संसद भवन का केंद्रीय कक्ष कहा जाता है। सबसे वरिष्ठ सदस्य डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा ने अस्थायी अध्यक्ष के रूप में उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की। अपने प्रारंभिक वक्तव्य में उन्होंने उस क्षण के ऐतिहासिक महत्व का उल्लेख किया और उसकी तुलना संयुक्त राज्य अमेरिका और फ्रांस के संवैधानिक सम्मेलनों से की। 11 दिसंबर 1946 को डॉ. राजेंद्र प्रसाद सभा के स्थायी अध्यक्ष चुने गए तथा एच.सी. मुखर्जी उपाध्यक्ष बने। प्रारंभिक सत्र आशावाद और ऐतिहासिक उत्तरदायित्व की भावना से चिह्नित थे, यद्यपि कार्यवाही पर विभाजन की छाया मँडरा रही थी।

भारतीय संविधान सभा का प्रथम ऐतिहासिक सत्र 9 दिसंबर 1946, सोमवार को नई दिल्ली के संविधान हॉल में आरंभ हुआ। यद्यपि संविधान सभा में 296 सदस्य थे, फिर भी प्रथम ऐतिहासिक सत्र में केवल 210 सदस्य उपस्थित थे। इस सत्र में उपस्थित होकर तत्कालीन भारत के प्रमुख बुद्धिजीवी श्री के.एम. मुंशी ने टिप्पणी की, ("भारत के लिए एक महान दिन का उदय हुआ है। भारतीय अपना स्वयं का संविधान बनाने जा रहे हैं, किंतु चारों ओर दुख व्याप्त है।") देश के निराशाजनक राजनीतिक परिदृश्य को देखते हुए श्री के.एम. मुंशी ने ऐसे विचार इसलिए व्यक्त किए थे क्योंकि मुस्लिम लीग ने संविधान सभा के उक्त ऐतिहासिक सत्र में भाग न लेने का निर्णय लिया था। विभिन्न रियासतों के शासक भी कांग्रेस नेताओं के साथ सहयोग नहीं कर रहे थे और ब्रिटिश सरकार के पास इस ऐतिहासिक सत्र के संबंध में कोई विशेष संदेश नहीं था। ब्रिटिश

प्रधानमंत्री श्री चर्चिल ने इस ऐतिहासिक सत्र के संबंध में अपने स्वघोषित विचारों से आग में घी डालने का काम किया कि "संविधान सभा भारत के केवल एक प्रमुख समुदाय का प्रतिनिधित्व करती थी।" श्री विस्काउंट साइमन ने भी यह कहकर अपनी नकारात्मक टिप्पणी की कि "भारत की संविधान सभा हिंदुओं का एक निकाय थी।

वास्तव में, उपर्युक्त विचार अंततः गलत, अन्यायपूर्ण और राजनीति से प्रेरित थे। क्योंकि संविधान सभा के प्रथम ऐतिहासिक सत्र में भारत की सभी जातियों, समुदायों और धर्मों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। सत्र में उपस्थित 210 सदस्यों में 155 उच्च जाति के हिंदू, 30 अनुसूचित जाति के प्रतिनिधि, 5 जनजातीय, 5 सिख, 5 भारतीय ईसाई, 3 एंग्लो-इंडियन, 3 पारसी और 4 मुस्लिम सदस्य थे। यद्यपि संविधान सभा में कुल 296 सदस्यों में से 80 मुस्लिम सदस्य थे, फिर भी उनकी उपस्थिति बहुत कम रही, क्योंकि मुस्लिम लीग ने मुस्लिम सदस्यों से संविधान सभा के प्रथम ऐतिहासिक सत्र का बहिष्कार करने का आह्वान किया था।

भारतीय संविधान के निर्माताओं का मुख्य कर्तव्य और उत्तरदायित्व देश की प्रत्येक जाति, वर्ग और समुदाय की आशाओं, आकांक्षाओं और सपनों को प्रतिबिंबित और प्रस्तुत करना था। कुछ लोगों ने संविधान सभा में सदस्यों के नामांकन की पद्धति का विरोध किया और यह तर्क दिया कि चूँकि नामित सदस्य आम जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं हैं, वे संविधान बनाते समय भारतीयों की आशाओं, आकांक्षाओं और सपनों को प्रतिबिंबित करने में विफल रहेंगे। विरोध करने वाले लोगों की उपर्युक्त आशंका पर प्रतिक्रिया देते हुए डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने टिप्पणी की, "संविधान सभा संविधान बनाने में किसी पक्षपातपूर्ण उद्देश्य से प्रेरित नहीं है। एक अच्छा और व्यावहारिक संविधान सुनिश्चित करने से परे उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं है। संविधान के अनुच्छेदों पर विचार करते समय उसकी दृष्टि किसी विशेष उपाय को पारित कराने पर नहीं है। भविष्य की संसद यदि संविधान सभा के रूप में बैठी।"

"उसके सदस्य पक्षपाती के रूप में कार्य करेंगे, जो संविधान में संशोधन कराने का प्रयास करेंगे ताकि दलगत उपायों को पारित कराना आसान हो सके, जिन्हें वे संविधान के कुछ अनुच्छेदों के कारण, जो उनके मार्ग में बाधा बने, संसद के माध्यम से पारित कराने में विफल रहे। जब संविधान सभा का कोई निजी स्वार्थ नहीं है, तब संसद का निजी स्वार्थ होता है।"

महात्मा गाँधी के मत में, संविधान सभा को भारतीयों के राष्ट्रीय जीवन को प्रतिबिंबित और प्रस्तुत करना चाहिए। गाँधी जी के इन्हीं विचारों का परिणाम था कि संविधान सभा में सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन, डॉ. बी.आर. अंबेडकर, श्री के.एम. मुंशी, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, प्रो. के.टी. शाह, एन. गोपालस्वामी आयंगर और हृदयनाथ कुंजरू जैसी महान हस्तियाँ जो भारत के विभिन्न प्रांतों से आते थे और संविधान सभा के सदस्य बने।

भारतीय संविधान सभा के प्रथम ऐतिहासिक सत्र का कार्यसूची (एजेंडा) था :-

1. अंतरिम अध्यक्ष का चयन।
2. सदस्यों का शपथ-ग्रहण समारोह।

सत्र के प्रारंभ में जे. बी. कृपलानी द्वारा ने देश के प्रमुख डॉ. सच्चिदानंद सिन्हा का नाम संविधान सभा के अंतरिम अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित किया और अध्यक्षता ग्रहण करने के बाद डॉ. सिन्हा ने अपने उद्घाटन भाषण में विश्व के विभिन्न देशों के संविधानों के बारे में संक्षेप में बताया और

सदस्यों को अमेरिकी संविधान का अध्ययन करने तथा उसमें गहराई से उतरने की सलाह दी। श्री सिन्हा ने आगे यह भी मत व्यक्त किया कि संविधान बनाते समय संविधान निर्माताओं को देश की सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक स्थिति का अध्ययन और अवलोकन करना चाहिए ताकि हम हम सभी वर्गों के लोगों की आवश्यकताओं का ध्यान रख सकें।

प्रसिद्ध अमेरिकी विधिवेत्ता जोसेफ स्टोरी के उल्लेखनीय कथनों को उद्धृत करते हुए श्री सच्चिदानंद सिन्हा ने भारतीय संविधान सभा के प्रथम ऐतिहासिक सत्र में उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों को इस प्रकार संबोधित किया,

"गणराज्यों का निर्माण नागरिकों की जन-भावना और बुद्धिमत्ता के बल पर होता है। उनका पतन तब होता है जब बुद्धिमान लोगों को सार्वजनिक परिषदों से इसलिए निकाल दिया जाता है कि वे ईमानदार होने का साहस करते हैं, और दुराचारी लोगों को इसलिए पुरस्कृत किया जाता है कि वे जनता की चापलूसी करते हैं, ताकि उसे धोखा दे सकें।" कवि इक़बाल की कुछ पंक्तियाँ सुनाते हुए और भारत के उज्ज्वल भविष्य की भविष्यवाणी करते हुए श्री सिन्हा ने बाइबिल के प्रसिद्ध पद "जहाँ कोई दृष्टि नहीं होती, वहाँ लोग नष्ट हो जाते हैं" को उद्धृत करते हुए अपना भाषण समाप्त किया।

डॉ. सिन्हा के समापन भाषण के बाद सदस्यों का शपथ-ग्रहण समारोह आरंभ हुआ। संविधान सभा के सचिव श्री एच.वी.आर. आयंगर ने शपथ-ग्रहण समारोह में भाग लेने के लिए प्रत्येक सदस्य का नाम पुकारा। प्रत्येक सदस्य नाम पुकारे जाने पर वह सचिव के पास जाते और शपथ लेने तथा एक रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने के बाद अपने संबंधित स्थान पर लौट आते थे।

भारतीय संविधान सभा के प्रथम ऐतिहासिक सत्र की समाप्ति की घोषणा से पूर्व भारत के प्रमुख बुद्धिजीवियों में से एक श्री के.एम. मुंशी ने टिप्पणी की: "इस क्षण विजय की भावना वातावरण में है, किंतु आने वाले संकट की गंध भी बनी हुई है। देश की स्वाधीनता का प्रथम प्रहर प्रारंभ हुआ।

## 1.7 संविधान सभा की कार्यप्रणाली

15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद संविधान सभा ने दोहरी भूमिका ग्रहण की: वह नए भारतीय अधिराज्य (डोमिनियन) की संप्रभु विधि-निर्माण संस्था के रूप में भी कार्य करती थी और संविधान-प्रारूपण संस्था के रूप में भी। इसका अर्थ यह था कि संवैधानिक उपबंधों पर बहस के साथ-साथ उसने देश के शासन के लिए आवश्यक सामान्य विधान भी पारित किए। राजनीतिक वातावरण राष्ट्र-निर्माण की तात्कालिकता, लाखों शरणार्थियों के पुनर्वास और रियासतों के एकीकरण से आवेशित था। इन चुनौतियों ने अनिवार्य रूप से सभा के विचार-विमर्श को प्रभावित किया, जिससे सदस्य एक सशक्त केंद्र सरकार के पक्षधर हुए और ऐसे समझौते खोजने की ओर प्रवृत्त हुए जो नाज़ुक संघ को एकजुट रख सकें।

- यह संविधान सभा भारत को एक स्वतंत्र संप्रभु गणराज्य घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान तैयार करने का अपना दृढ़ और गंभीर संकल्प घोषित करती है।
- वे क्षेत्र जो ब्रिटिश भारत का हिस्सा थे, वे क्षेत्र जो अब भारतीय रियासतें बन चुके हैं, तथा

भारत के ऐसे अन्य भाग जो भारत और रियासतों से बाहर हैं, साथ ही अन्य ऐसे क्षेत्र जो स्वतंत्र संप्रभु भारत में सम्मिलित होने के इच्छुक हैं, इन सबका एक संघ होगा।

- वे क्षेत्र, चाहे अपनी वर्तमान सीमाओं के साथ हों या संविधान सभा द्वारा निर्धारित अन्य सीमाओं के साथ और तत्पश्चात संविधान की विधि के अनुसार, अवशिष्ट शक्तियों सहित स्वायत्त इकाइयों की स्थिति रखेंगे और उसे बनाए रखेंगे तथा शासन और प्रशासन की सभी शक्तियों और कार्यों का प्रयोग करेंगे, सिवाय उन शक्तियों और कार्यों के जो संघ में निहित हैं या उसे सौंपे गए हैं अथवा जो संघ में अंतर्निहित या निहितार्थ हैं या उससे उत्पन्न होते हैं।
- संप्रभु स्वतंत्र भारत, उसके घटक भागों और शासन के अंगों की समस्त शक्ति और प्राधिकार जनता से व्युत्पन्न होंगे;
- भारत के समस्त लोगों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय; प्रतिष्ठा, अवसर और विधि के समक्ष समता; तथा विधि और सार्वजनिक नैतिकता के अधीन विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना, व्यवसाय, संघ बनाने और कार्य करने की स्वतंत्रता की गारंटी और सुरक्षा प्रदान की जाएगी; और
- अल्पसंख्यकों, पिछड़े और जनजातीय क्षेत्रों, दलित और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए पर्याप्त रक्षोपाय किए जाएँगे।
- गणराज्य के क्षेत्र की अखंडता तथा भूमि, समुद्र और आकाश पर उसके संप्रभु अधिकारों को न्याय और सभ्य राष्ट्रों की विधि के अनुसार बनाए रखा जाएगा;
- भारत, एक प्राचीन भूमि के रूप में, विश्व में अपना उचित और सम्मानित स्थान प्राप्त करे तथा विश्व शांति और मानव-जाति के कल्याण के संवर्धन में अपना पूर्ण और स्वैच्छिक योगदान दे।

## 1.8 कार्य संचालन हेतु विभिन्न समितियों का निर्माण

संविधान निर्माण जैसे विशाल और जटिल कार्यों के प्रबंधन हेतु संविधान सभा ने विभिन्न समितियों की एक श्रृंखला का सृजन किया जिसके द्वारा किया गया साक्ष्य एकत्रीकरण, विशेषज्ञ परामर्श, रिपोर्ट निर्माण आगे चलकर संविधान सभा की प्रमुख चर्चाओं का आधार बनी। समिति प्रणाली ने मौलिक अधिकारों से लेकर केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण तक, और अल्पसंख्यक रक्षोपायों से लेकर राजभाषा नीति तक के मुद्दों की विस्तृत जाँच की अनुमति दी।

**संविधान सभा की समितियाँ**

**प्रारूप समिति के सदस्य: अध्यक्ष – डॉ. बी.आर. अंबेडकर**

**सदस्य:**

- एन. गोपालस्वामी आयंगर
- मुहम्मद सादुल्ला

- अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर
- के.एम. मुंशी
- बी.एल. मित्तर, जिनके स्वास्थ्य संबंधी कारणों से त्यागपत्र देने पर उनके स्थान पर एन. माधव राव को नियुक्त किया गया।
- डॉ. डी.पी. खेतान (1948 में निधन हो गया और उनके स्थान पर टी.टी. कृष्णामाचारी को नियुक्त किया गया)

**प्रक्रिया संबंधी समितियों में शामिल हैं:**

- संचालन समिति
- प्रक्रिया नियम समिति
- भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के प्रभाव पर समिति
- कार्य-क्रम समिति (Orders of Business Committee), प्रत्ययपत्र समिति (Credentials Committee)
- सदन समिति
- हिंदी अनुवाद समिति
- उर्दू अनुवाद समिति
- वित्त एवं कर्मचारी समिति
- प्रेस दीर्घा समिति

## 1.9 प्रमुख समितियाँ और उनके अध्यक्ष

सबसे महत्वपूर्ण समितियों में जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता वाली संघ शक्ति समिति, सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता वाली प्रांतीय संविधान समिति, तथा मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों और जनजातीय एवं अपवर्जित क्षेत्रों पर सलाहकार समिति शामिल थीं, जिसके अध्यक्ष भी पटेल ही थे। डॉ. बी.आर. अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने इस प्रक्रिया में विशेष स्थान रखा, क्योंकि उसे सभा के निर्णयों को सटीक संवैधानिक भाषा में रूपांतरित करने का कार्य सौंपा गया था। अन्य महत्वपूर्ण समितियों में राज्य समिति, संचालन समिति और प्रक्रिया नियम समिति शामिल थीं। प्रत्येक अध्यक्ष अपने कार्य में अपने वैचारिक झुकाव और राजनीतिक प्राथमिकताएँ लेकर आया, जिन्होंने संविधान के अंतिम स्वरूप को आकार दिया।

| भारतीय संविधान सभा की प्रमुख समितियाँ | अध्यक्ष |
|---|---|
| राष्ट्रीय ध्वज पर तदर्थ समिति | राजेंद्र प्रसाद |
| मौलिक अधिकारों पर सलाहकार समिति | वल्लभभाई पटेल |
| संविधान सभा के कार्यों पर समिति | जी.वी. मावलंकर |
| अल्पसंख्यकों तथा जनजातीय एवं अपवर्जित क्षेत्रों पर समिति | वल्लभभाई पटेल |
| प्रक्रिया नियम समिति | राजेंद्र प्रसाद |
| प्रारूप संविधान की जाँच हेतु विशेष समिति | अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर |
| प्रांतीय संविधान समिति | वल्लभभाई पटेल |
| प्रारूप समिति | बी.आर. अंबेडकर |
| अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित क्षेत्र उप-समिति | ए.वी. ठक्कर |
| वित्त एवं कर्मचारी समिति | राजेंद्र प्रसाद |
| मौलिक अधिकार उप-समिति | जे.बी. कृपलानी |
| सदन समिति | बी. पट्टाभि सीतारामैया |
| अल्पसंख्यक उप-समिति | एच.सी. मुखर्जी |
| पूर्वोत्तर सीमांत जनजातीय क्षेत्र तथा असम, अपवर्जित और आंशिक रूप से अपवर्जित क्षेत्र उप-समिति | गोपीनाथ बारदोलोई |
| कार्य-क्रम समिति | के.एम. मुंशी |
| राज्य समिति | जवाहरलाल नेहरू |
| संचालन समिति | राजेंद्र प्रसाद |
| संघ संविधान समिति | जवाहरलाल नेहरू |
| संघ शक्ति समिति | जवाहरलाल नेहरू |

## 1.10 संविधान सभा के सदस्यों की दृष्टि और वैचारिक अवधारणाएँ

संविधान सभा के सदस्य एक लोकतांत्रिक भारत के निर्माण हेतु प्रतिबद्धता, किंतु इस बारे में लोकतांत्रिक प्रणाली पर सदस्यों के विभन्न मत थे। नेहरू और पटेल जैसे नेताओं ने राष्ट्रीय एकता और सशक्त केंद्र पर बल दिया, और विभाजन के बाद इन्हें आवश्यक माना। अंबेडकर ने

सामाजिक न्याय और जाति-आधारित भेदभाव के उन्मूलन पर ध्यान केंद्रित किया, और यह सुनिश्चित किया कि संविधान में समानता और सकारात्मक कार्रवाई के सुदृढ़ उपबंध हों। जयपाल सिंह मुंडा और अन्य जनजातीय प्रतिनिधियों ने स्वदेशी संस्कृतियों की मान्यता और संरक्षण तथा जनजातीय क्षेत्रों की स्वायत्तता की माँग की। भाषा एक अन्य वैचारिक विभाजन-रेखा थी: जहाँ कुछ सदस्य हिंदी को राष्ट्रभाषा के लिए स्वाभाविक विकल्प मानते थे, वहीं अन्य को आशंका थी कि इससे गैर-हिंदी भाषी क्षेत्र अलग-थलग पड़ जाएँगे। ये वैचारिक झुकाव प्रायः परस्पर टकराते थे, किंतु सभा की बहस और समझौते की संस्कृति ने अंतिम पाठ में इनमें से अनेक मतभेदों का समाधान संभव बनाया।

संविधान सभा की संरचना और प्रकृति: कैबिनेट मिशन के प्रावधानों के अनुसार संविधान सभा का चुनाव प्रांतीय विधानमंडलों द्वारा समानुपातिक प्रतिनिधित्व की प्रणाली से अप्रत्यक्ष रूप से किया जाना था। ये विधानमंडल स्वयं सीमित मताधिकार पर निर्वाचित थे, जिसमें वयस्क आबादी का लगभग 20% से 24% हिस्सा शामिल था। संविधान सभा की संरचना की मूल विशेषताएँ इस प्रकार हैं:

(i) **जन-आधार पर निर्वाचन :** संविधान सभा का चुनाव लोकतांत्रिक आधार पर हुआ था। प्रत्येक प्रांत को सभा में उसकी जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व दिया गया।

(ii) **सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की समाप्ति :** सांप्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र इस सीमा तक समाप्त कर दिए गए कि सिखों और मुसलमानों को छोड़कर किसी भी समुदाय को पृथक निर्वाचन क्षेत्र नहीं दिया गया।

(iii) **स्वदेशी आधार :** संविधान सभा के सभी सदस्य भारतीय थे। ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा में किसी भी सदस्य को नामित नहीं किया। इस अर्थ में सभा विशुद्ध रूप से भारतीय थी और उस सीमा तक बाहरी नियंत्रण या हस्तक्षेप से मुक्त थी। इस प्रकार यह सभा योजना के ढाँचे के भीतर संप्रभु थी।

(iv) **रियासतों से सदस्यों का नामांकन :** रियासतों के प्रतिनिधि उन राज्यों की जनता द्वारा निर्वाचित नहीं थे, बल्कि संबंधित राजाओं द्वारा नामित किए गए थे। इससे सभा कम प्रतिनिधिक बन गई। संविधान सभा में 389 सदस्य होने थे, जिनमें से 296 ब्रिटिश भारतीय प्रांतों से निर्वाचित होने थे और 93 विभिन्न रियासतों के नामित सदस्य होने थे। 296 निर्वाचित सदस्यों में से 212 सामान्य श्रेणी में रखे गए, तथा 4 सीटें सिखों और मुसलमानों के लिए आरक्षित थीं।

(v) **कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व :** संविधान सभा में कांग्रेस पार्टी का वर्चस्व था। कांग्रेस ने प्रांतीय विधानमंडलों की कुल सीटों में से 58 प्रतिशत सीटें प्राप्त कीं। संविधान सभा में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को 212 सामान्य सीटों में से 203 सीटें मिलीं। इस प्रकार कांग्रेस ने संविधान सभा की कुल सीटों का 69 प्रतिशत प्रतिनिधित्व किया। विभाजन के बाद यह प्रतिशत बढ़कर 82 प्रतिशत हो गया। इस प्रकार कांग्रेस को संविधान सभा में सबसे बड़ी प्रभुत्वशाली पार्टी माना जाता था।

(vi) **इसमें विविध विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व था :** स्वतंत्रता से पहले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक विषम-रूप (मिश्रित) पार्टी थी, क्योंकि उसमें विभिन्न विचारधाराओं के समूह शामिल थे। प्रमुख समूह समाजवादी, गाँधीवादी और दक्षिणपंथी थे। समाजवादी आगे मार्क्सवादी और लोकतांत्रिक समूहों में विभाजित थे। मार्क्सवादी समाजवादी समाज के रूपांतरण के लिए क्रांतिकारी तरीकों में विश्वास करते थे, जबकि लोकतांत्रिक समाजवादी क्रमिक (विकासवादी) तरीकों के पक्ष में थे। ये दोनों समूह निजी संपत्ति की संस्था का विरोध करते थे और एक समतावादी समाज की स्थापना करना चाहते थे। नेहरू लोकतांत्रिक समाजवाद के प्रतिनिधि थे। दक्षिणपंथी समूह पूँजीपति और भूस्वामी वर्ग के हितों का समर्थन करता था। वे संपत्ति के निजी स्वामित्व के पक्षधर थे। सरदार पटेल दक्षिणपंथी समूह के नेता थे। गाँधीवादी समूह ने ग्रामीण और लघु उद्योगों को बढ़ावा देने की वकालत की। उसने उत्पादन की पूँजीवादी पद्धति की आलोचना की। इस प्रकार इन सभी विचारधाराओं का संविधान निर्माण पर निश्चित प्रभाव पड़ा।

(vii) **पश्चिमीकृत पेशेवर मध्यम वर्ग का वर्चस्व :** संविधान सभा के अधिकांश सदस्य एक अत्यंत छोटे पश्चिमीकृत मध्यम वर्ग से थे, जो भारत में ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का परिणाम था। इस वर्ग के सदस्यों को एक उग्र और विदेशी सामाजिक दृष्टिकोण विरासत में मिला था, जो मुख्यतः 20वीं सदी के यूरोपीय अनुभव पर आधारित था। इसके अलावा, संविधान सभा के अधिकांश सदस्य वकील थे, जिन्होंने संविधान को अधिक विधिवादी (क़ानूनी) बनाने का प्रयास किया। इसलिए यह ठीक ही कहा गया है कि हमारा संविधान विधिवाद की अति से ग्रस्त है।

## 1.11 प्रारूप समिति की रिपोर्ट

संविधान सभा का कार्य समितियों की विभिन्न रिपोर्टों के माध्यम से व्यापक सिद्धांतों से स्पष्ट संवैधानिक भाषा की ओर बढ़ा। इन रिपोर्टों ने महीनों के विचार-विमर्श, विशेषज्ञों से परामर्श और अन्य संविधानों के तुलनात्मक अध्ययन का सार प्रस्तुत किया, जिससे ऐसी सिफ़ारिशें बनीं जिन पर पूर्ण सभा में बहस हो सकती थी। 29 अगस्त 1947 को नियुक्त और डॉ. बी.आर. अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति इस चरण की केंद्रीय संस्था थी। उसका अधिदेश सभा के निर्णयों को — जैसा कि समिति रिपोर्टों और पूर्ण-सभा की बहसों में व्यक्त हुआ — लेकर उन्हें एक सुसंगत, विधिक रूप से सटीक प्रारूप संविधान में रूपांतरित करना था।

### प्रथम प्रारूप (21 फरवरी 1948)

डॉ. बी.आर. अंबेडकर की अध्यक्षता वाली प्रारूप समिति ने 21 फरवरी 1948 को प्रथम प्रारूप प्रस्तुत किया। इसमें 315 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थीं। इस प्रारूप को सार्वजनिक चर्चा के लिए परिचालित किया गया, जिस पर प्रांतीय विधानसभाओं, विधि विशेषज्ञों और जनता से 7,000 से अधिक टिप्पणियाँ प्राप्त हुईं, जिन्होंने आगे के संशोधनों को आकार दिया।

### द्वितीय प्रारूप (21 अक्टूबर 1948)

द्वितीय प्रारूप 21 अक्टूबर 1948 को संविधान सभा में प्रस्तुत किया गया। इसमें जनता की प्रतिक्रिया और सभा की बहसों से आए परिवर्तन परिलक्षित थे। सदस्यों ने मौलिक अधिकारों,

संघीय व्यवस्था और आपातकालीन उपबंधों पर विस्तार से विचार-विमर्श किया। यह प्रारूप नवंबर 1949 तक विस्तृत चर्चा के लिए खुला रहा।

### तृतीय प्रारूप (फरवरी – अक्टूबर, 1949)

फरवरी और अक्टूबर 1949 के बीच प्रारूप समिति ने सभा में प्रस्तुत लगभग 2,000 संशोधनों पर विचार करने के बाद तृतीय प्रारूप प्रस्तुत किया। प्रमुख बहसें राष्ट्रभाषा, शक्तियों के पृथक्करण, अल्पसंख्यक अधिकारों और न्यायपालिका की भूमिका पर केंद्रित थीं, जिन्होंने संविधान को उसके अंतिम स्वरूप के निकट पहुँचा दिया।

### अंतिम प्रारूप (26 नवंबर 1949)

26 नवंबर 1949 को संविधान सभा ने 395 अनुच्छेदों, 22 भागों और 8 अनुसूचियों वाले अंतिम संविधान को औपचारिक रूप से अपनाया। इस प्रक्रिया में 2 वर्ष, 11 माह और 18 दिन लगे। इस तिथि को अब भारत में संविधान दिवस के रूप में मनाया जाता है।

### हस्ताक्षर (24 जनवरी 1950)

24 जनवरी 1950 को संविधान सभा के 299 सदस्यों में से 284 ने अंग्रेज़ी और हिंदी में हस्तलिखित अंतिम प्रतियों पर हस्ताक्षर किए। दो दिन बाद, 26 जनवरी 1950 को संविधान लागू हो गया, जो भारत के एक संप्रभु लोकतांत्रिक गणराज्य में परिवर्तन का सूचक था।

## प्रारूप समिति के सामने आई चुनौतियाँ

प्रारूप समिति, यद्यपि राजनीतिक और विधिक पृष्ठभूमि वाले सदस्यों से भरी थी, फिर भी संविधान का प्रारूप तैयार करते समय उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जो नीचे दी गई हैं:

- भाषाई, धार्मिक और सांस्कृतिक भिन्नताओं के बीच संतुलन बनाना।
- मौलिक अधिकार बनाम नीति निदेशक तत्व, जबकि स्वतंत्रता से समझौता किए बिना सामाजिक न्याय सुनिश्चित करना।
- संघ और राज्यों के बीच शक्ति-वितरण निर्धारित करते समय संघीय बनाम एकात्मक ढाँचे को लेकर असमंजस।
- अन्य संविधानों के विचारों को भारतीय संदर्भ के अनुरूप अपनाना और समाहित करना।
- स्वतंत्रता के बाद की आर्थिक और राजनीतिक अस्थिरता के बीच प्रारूप तैयार करना।

### प्रारूप समिति की आलोचना

अंतिम प्रारूप की अनेक विशेषताओं और सफल क्रियान्वयन के बावजूद प्रारूप समिति को अनेक प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं का सामना करना पड़ा, जिनमें शामिल हैं:

- सीमित प्रतिनिधित्व, केवल सात सदस्यों के साथ, जिससे दृष्टिकोणों की विविधता संभवतः कम हुई।
- अध्यक्ष डॉ. अंबेडकर का प्रभावशाली प्रभाव, यद्यपि यह कार्यकुशलता के लिए सकारात्मक था।

- जनता के समझने के लिए अत्यधिक जटिल।
- अधिवक्ताओं और राजनेताओं का वर्चस्व।
- महिलाओं का कोई प्रतिनिधित्व नहीं।
- उपबंधों का उधार लिया जाना

### 1.11.1 संवैधानिक समिति की रिपोर्टें

प्रारूप समिति द्वारा अपना कार्य शुरू करने से पहले सभा की विषय-विशिष्ट समितियों ने अपनी रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता वाली संघ शक्ति समिति ने केंद्र सरकार के अधिकार-क्षेत्र की सीमा निर्धारित की, और हाल के विभाजन तथा राष्ट्रीय एकीकरण की आवश्यकता को देखते हुए एक सशक्त केंद्र का पक्ष लिया। सरदार वल्लभभाई पटेल के अधीन प्रांतीय संविधान समिति ने राज्यों की शक्तियों और उत्तरदायित्वों की रूपरेखा तैयार की, साथ ही रियासतों के संघ में एकीकरण का भी समाधान किया। मौलिक अधिकारों, अल्पसंख्यकों और जनजातीय एवं अपवर्जित क्षेत्रों पर सलाहकार समिति ने, जिसके अध्यक्ष भी पटेल थे, सभी नागरिकों के लिए न्यायोचित अधिकारों के एक समूह तथा वंचित समूहों के लिए विशेष रक्षोपायों की सिफ़ारिश की। ये रिपोर्टें अंतिम रूपरेखाएँ नहीं थीं, बल्कि ऐसे ढाँचे थे जिन्हें प्रारूप समिति को परिष्कृत करना था।

### 1.11.2 संविधान सभा की बहसें (सीएडी)

संविधान सभा की बहसें — जिन्हें प्रायः केवल सीएडी (CAD) कहा जाता है — वह मंच थीं जहाँ इन समितियों की सिफ़ारिशों का परीक्षण हुआ, उन पर विवाद हुआ और उनमें संशोधन किए गए। सदस्यों ने मौलिक अधिकारों की व्याप्ति से लेकर राष्ट्रभाषा के चयन तक के मुद्दों पर विस्तार से अपने विचार रखे। बहसें उच्च आदर्शों और तीखे मतभेदों, दोनों से चिह्नित थीं। उदाहरण के लिए, भाषा के प्रश्न ने आर.वी. धुलेकर जैसे सदस्यों के भावपूर्ण हस्तक्षेप को जन्म दिया, जो हिंदी को एकमात्र राजभाषा बनाने पर अड़े थे, और नज़ीरुद्दीन अहमद के, जिन्होंने गैर-हिंदी भाषियों को अलग-थलग करने के प्रति सावधान किया। जनजातीय नेता जयपाल सिंह मुंडा ने इस मंच का उपयोग आदिवासी भाषाओं और संस्कृतियों की मान्यता और संरक्षण की माँग के लिए किया। ये वार्तालाप मात्र लफ़्फ़ाज़ी नहीं थे; इनके कारण प्रायः प्रारूप के उपबंधों में ठोस परिवर्तन हुए।

### 1.11.3 प्रारूप समिति

प्रारूप समिति की भूमिका तकनीकी भी थी और राजनीतिक भी। अध्यक्ष के रूप में अंबेडकर सभा के प्रायः भिन्न-भिन्न निर्णयों को एक एकल, आंतरिक रूप से सुसंगत दस्तावेज़ में समन्वित करने के लिए उत्तरदायी थे। समिति के अन्य सदस्य — जिनमें के.एम. मुंशी, अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर, एन. गोपालस्वामी आयंगर और सैयद मोहम्मद सादुल्ला शामिल थे — विधि, प्रशासन और अल्पसंख्यक अधिकारों की विशेषज्ञता लेकर आए। उन्होंने विश्व भर के संविधानों का परीक्षण किया, उपयोगी उपबंधों को उधार लिया और उन्हें भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप ढाला। समिति को यह भी सुनिश्चित करना था कि संविधान की भाषा स्पष्ट, सटीक और अस्पष्टता से मुक्त हो, जो सभा में हुए राजनीतिक समझौतों को समायोजित करने की आवश्यकता के कारण एक जटिल कार्य था।

### 1.11.4 संविधान को अपनाया जाना

प्रारूप संविधान पर लगभग एक वर्ष तक खंड-दर-खंड बहस हुई। सदस्यों ने सैकड़ों संशोधन प्रस्तावित किए और उन पर मतदान किया, जिनमें से कुछ मामूली और तकनीकी थे, जबकि अन्य ने प्रमुख उपबंधों के सार को बदल दिया। भाषा-समझौता — आरंभिक अवधि के लिए हिंदी के साथ अंग्रेज़ी को बनाए रखना — इन्हीं बहसों से उभरा, साथ ही अल्पसंख्यक अधिकारों और आपातकाल के दौरान राष्ट्रपति की शक्तियों से संबंधित उपबंधों में सुधार भी। 26 नवंबर 1949 को संविधान सभा ने संविधान को अपनाया, और डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इसे ऐसा दस्तावेज़ घोषित किया जो भारत की जनता की इच्छा और आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता है। संविधान 26 जनवरी 1950 को लागू हुआ; 26 जनवरी को 1930 में पूर्ण स्वराज की घोषणा की स्मृति में चुना गया था।

## 1.12 भारतीय संविधान की उद्घोषणा

भारत के संविधान की औपचारिक उद्घोषणा गहन ऐतिहासिक और प्रतीकात्मक महत्व का क्षण था। 26 नवंबर 1949 को लगभग तीन वर्षों के विचार-विमर्श के बाद संविधान सभा ने संविधान का अंतिम पाठ अपनाया। सभा के अध्यक्ष के रूप में डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने सदस्यों को एक भाषण में संबोधित किया, जिसमें उपलब्धि का गौरव और उत्तरदायित्व की गंभीरता, दोनों झलकते थे। उन्होंने प्रारूप समिति के अथक कार्य, प्रत्येक सदस्य के योगदान और संवैधानिक सलाहकार बी.एन. राव के मार्गदर्शन को स्वीकार किया। यह उद्घोषणा मात्र एक प्रक्रियात्मक कार्य नहीं थी; यह इस बात की सार्वजनिक पुष्टि थी कि भारत के पास अब एक सर्वोच्च विधिक दस्तावेज़ है, जो उसके अपने प्रतिनिधियों द्वारा रचा गया है और जो राष्ट्र के राजनीतिक जीवन को शासित करेगा। संविधान के प्रभावी होने की तिथि के रूप में 26 जनवरी 1950 का चयन सोद्देश्य था — यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1930 के लाहौर अधिवेशन की बीसवीं वर्षगाँठ थी, जब पूर्ण स्वराज (पूर्ण स्वतंत्रता) की माँग पहली बार घोषित की गई थी। संविधान के प्रवर्तन को उस पूर्ववर्ती मील के पत्थर से जोड़कर निर्माताओं ने स्वतंत्रता संग्राम और नवीन गणराज्य के बीच निरंतरता को रेखांकित किया।

## 1.13 भारतीय संविधान

26 जनवरी 1950 को जब यह लागू हुआ, तब भारत का संविधान विश्व का सबसे लंबा लिखित संविधान था। इसमें 395 अनुच्छेद और 8 अनुसूचियाँ थीं (जो अब संशोधनों के माध्यम से बढ़कर 470 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हो गई हैं), जो शासन के हर पहलू को समेटते थे — विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका की संरचना से लेकर संघ और राज्यों के बीच शक्तियों के वितरण तक, मौलिक अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों से लेकर आपातकालीन उपबंधों और राजभाषा नीति तक।

संविधान अपनी दृष्टि के विस्तार के लिए उल्लेखनीय था। उसने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक और आर्थिक न्याय के साथ जोड़ने, व्यक्तिगत स्वतंत्रताओं की रक्षा करते हुए राज्य को परिवर्तनकारी सुधार करने में सक्षम बनाने, और राष्ट्र की एकता को बनाए रखते हुए उसकी विविधता को मान्यता देने का प्रयास किया। यह एक विधिक चार्टर भी था और एक नैतिक अनुबंध

भी, जो औपनिवेशिक शासन से स्वशासन की ओर बढ़ते एक जन-समूह की आकांक्षाओं को मूर्त रूप देता था।

## 1.14 भारत के संविधान की मूल विशेषताएँ

संविधान की मूल विशेषताएँ वे आवश्यक लक्षण हैं जो उसकी पहचान को परिभाषित करते हैं और जिन्हें इस प्रकार नहीं बदला जा सकता कि उसके मूल सिद्धांत नष्ट हो जाएँ। यद्यपि "मूल संरचना सिद्धांत" को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा केशवानंद भारती मामले (1973) में बाद में ही स्पष्ट किया गया, तथापि इनमें से अनेक विशेषताएँ आरंभ से ही समाहित थीं।

### 1.14.1 लिखित संविधान

भारत का संविधान एक एकल, समेकित दस्तावेज़ है, जो ब्रिटिश प्रणाली की अलिखित परंपराओं से भिन्न है। यह लिखित रूप शासन के सभी मामलों के लिए स्पष्टता, सुगमता और एक निश्चित संदर्भ सुनिश्चित करता है।

### 1.14.2 स्वनिर्मित और अधिनियमित संविधान

अनेक उत्तर-औपनिवेशिक राज्यों के विपरीत, जिन्हें अपने पूर्व शासकों द्वारा तैयार किए गए संविधान विरासत में मिले, भारत का संविधान पूरी तरह उसकी अपनी संविधान सभा द्वारा बनाया गया। इसने उसे एक अनूठी वैधता और अपनी जनता की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं से गहरा जुड़ाव प्रदान किया।

### 1.14.3 संविधान की प्रस्तावना

प्रस्तावना संविधान के मार्गदर्शक दर्शन को प्रस्तुत करती है, जो भारत को एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित करती है और राज्य को सभी नागरिकों के लिए न्याय, स्वतंत्रता, समता और बंधुता सुनिश्चित करने के प्रति प्रतिबद्ध करती है। यह शेष दस्तावेज़ की व्याख्या के लिए परिचय और नैतिक दिशासूचक, दोनों का काम करती है।

### 1.14.4 भारत: एक संप्रभु, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य देश

**1.14.4.1 संप्रभु राज्य के रूप में भारत :** प्रस्तावना घोषित करती है कि भारत एक संप्रभु राज्य है। यह इस तथ्य का प्रमाण है कि भारत अब ब्रिटिश ताज का आश्रित, उपनिवेश या अधिकृत क्षेत्र नहीं है। यह उस अधिराज्य (डोमिनियन) की स्थिति के अंत की पुष्टि करती है जो भारत को 15 अगस्त 1947 को ब्रिटिश शासन की समाप्ति के बाद तकनीकी रूप से मिली थी। यह पुष्टि करती है कि भारत आंतरिक और बाह्य रूप से अपने निर्णय स्वयं लेने के लिए स्वतंत्र है।

**1.14.4.2 समाजवादी राज्य के रूप में भारत:** यद्यपि "समाजवादी" शब्द को 1976 में 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में जोड़ा गया, फिर भी संविधान ने आरंभ से ही एक ऐसे राज्य की परिकल्पना की थी जो असमानताओं को कम करने और सामाजिक तथा आर्थिक न्याय को बढ़ावा देने के प्रति प्रतिबद्ध हो।

**1.14.4.3 पंथनिरपेक्ष राज्य के रूप में भारत:** भारतीय संदर्भ में पंथनिरपेक्षता का अर्थ है कि राज्य सभी धर्मों से समान दूरी बनाए रखता है, किसी भी आस्था का न पक्ष लेता है, न उसके साथ

भेदभाव करता है, और साथ ही सभी नागरिकों को धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी देता है। अनुच्छेद 25 से 28 के अंतर्गत संविधान सभी नागरिकों को धार्मिक

स्वतंत्रता का अधिकार प्रदान करता है। यह बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों के लिए समान अधिकार, विधि का शासन और अल्पसंख्यकों के लिए विशेष संरक्षण का प्रावधान करता है।

**1.14.4.4 लोकतंत्रात्मक राज्य के रूप में भारत:** प्रस्तावना भारत को एक लोकतंत्रात्मक राज्य घोषित करती है और भारत का संविधान एक लोकतांत्रिक व्यवस्था का प्रावधान करता है। सरकार का अधिकार जनता की संप्रभुता पर आधारित है। भारत में लोकतंत्र सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, आवधिक चुनावों, और निर्वाचित प्रतिनिधियों के माध्यम से जनता के प्रति सरकार की जवाबदेही पर आधारित है।

**1.14.4.5 गणराज्य के रूप में भारत :** गणराज्य होने का अर्थ है कि राष्ट्राध्यक्ष वंशानुगत अधिकार से पद धारण करने के बजाय एक निश्चित अवधि के लिए अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। प्रस्तावना भारत को एक गणराज्य घोषित करती है। इसका अर्थ है कि भारत पर किसी राजा या नामित राष्ट्राध्यक्ष का शासन नहीं है। सकारात्मक रूप में, इसका अर्थ है कि भारत का एक निर्वाचित राष्ट्राध्यक्ष है जो एक निश्चित अवधि के लिए शक्ति का प्रयोग करता है। भारत की गणराज्यीय स्थिति राष्ट्रमंडल की भारतीय सदस्यता से किसी भी प्रकार टकराती नहीं है। भारत का राष्ट्रपति राज्य का संप्रभु प्रमुख है, जो जनता द्वारा 5 वर्ष की निश्चित अवधि के लिए अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित होता है। अतः भारत एक गणराज्य है।

**1.14.5 राज्यों का संघ :** संविधान का अनुच्छेद 1 भारत को "राज्यों का संघ" बताता है, जिसका अर्थ है कि यह संघ संप्रभु इकाइयों के बीच किसी समझौते का परिणाम नहीं है, बल्कि एक अविनाशी केंद्र वाला अविनाशी संघ है।

### 1.14.6 एकात्मक भावना वाली संघीय व्यवस्था

यद्यपि संविधान एक संघीय ढाँचा स्थापित करता है जिसमें शक्तियाँ संघ और राज्यों के बीच विभाजित हैं, वह केंद्र को सशक्त शक्तियों से भी सुसज्जित करता है,

— विशेषकर आपातकाल के दौरान,

— ताकि राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित हो सके।

संविधान एकात्मक भावना वाले संघीय ढाँचे का प्रावधान करता है। विद्वान भारत को 'अर्ध-संघ' या एकात्मक झुकाव वाला संघ, या यहाँ तक कि एकात्मक संघ भी कहते हैं। संघ की तरह, भारत का संविधान निम्नलिखित का प्रावधान करता है:

(i) केंद्र और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन, (ii) लिखित और कठोर संविधान, (iii) संविधान की सर्वोच्चता, (iv) शक्ति-विभाजन पर केंद्र-राज्य विवादों का निर्णय करने की शक्ति वाली स्वतंत्र न्यायपालिका, और (v) द्विसदनीयता। तथापि, अत्यंत सशक्त केंद्र, एकल संविधान, एकल नागरिकता, आपातकालीन उपबंध, साझा निर्वाचन आयोग, साझा अखिल भारतीय सेवाओं आदि का प्रावधान करके संविधान स्पष्ट रूप से एकात्मक भावना को प्रतिबिंबित करता है। संघवाद

और एकात्मकता का यह मिश्रण भारतीय समाज की बहुलतावादी प्रकृति और क्षेत्रीय विविधताओं की उपस्थिति, तथा राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने की आवश्यकता, दोनों को ध्यान में रखकर किया गया है। पहली विशेषता ने संघवाद के पक्ष में निर्णय के लिए बाध्य किया, जबकि दूसरी ने एकात्मकता को आवश्यक बनाया। अतः भारत का संविधान न तो पूर्णतः संघीय है और न ही एकात्मक, बल्कि दोनों का मिश्रण है।

### शक्तियों का केंद्रीकरण

एकात्मक सरकार वह है जिसमें प्रशासन की सभी शक्तियाँ एक एकल केंद्र में निहित होती हैं। केंद्र सर्वशक्तिमान होता है। प्रशासनिक सुविधा के लिए एकात्मक राज्य को छोटी इकाइयों में विभाजित किया जा सकता है, किंतु उन इकाइयों की अपनी कोई संवैधानिक स्थिति नहीं होती।

दूसरे शब्दों में, संविधान इकाइयों को कोई शक्ति प्रदान नहीं करता। यह केंद्र सरकार है जो अपनी इच्छा से इकाइयों को कुछ शक्तियाँ प्रत्यायोजित करती है। इसलिए इकाइयाँ केंद्र की अधीनस्थ अभिकर्ता हैं। उनके द्वारा प्रयोग की जाने वाली शक्तियाँ केंद्र की देन हैं और इसलिए उन्हें किसी भी क्षण वापस लिया जा सकता है। इस प्रकार इकाइयाँ किसी भी रूप में स्वायत्त और स्वतंत्र नहीं हैं।

### एकल सरकार

एकात्मक सरकार में शासकीय तंत्र का एक ही समूह होता है। एक सर्वोच्च विधायिका, एक कार्यपालिका निकाय और एक सर्वोच्च न्यायपालिका होती है। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड एक एकात्मक राज्य है। उसकी विधायिका के रूप में एक संसद, कार्यपालिका के रूप में सम्राट-इन-काउंसिल (King-in-Council) और सर्वोच्च न्यायपालिका के रूप में हाउस ऑफ लॉर्ड्स की न्यायिक समिति है।

### लिखित या अलिखित संविधान

एकात्मक सरकार का संविधान लिखित हो भी सकता है और नहीं भी। उदाहरण के लिए, इंग्लैंड और फ्रांस एकात्मक राज्य हैं। फ्रांस का संविधान लिखित है, किंतु इंग्लैंड का कोई लिखित संविधान नहीं है।

### कठोर या लचीला संविधान

संघ के विपरीत, एकात्मक राज्य का संविधान कठोर हो भी सकता है और नहीं भी, जैसे इंग्लैंड का संविधान लचीला है, जबकि फ्रांस का थोड़ा कठोर है।

### कोई विशेष न्यायपालिका नहीं

एकात्मक सरकार में न्यायिक वीटो की व्यापक शक्तियों वाली किसी विशेष न्यायपालिका की आवश्यकता नहीं होती। उदाहरण के लिए, यू.के. का सर्वोच्च न्यायालय भी संसद द्वारा पारित कानून पर निर्णय देने के लिए नहीं बैठ सकता।

## 1.15 निष्कर्ष

भारतीय संविधान कोई 'उधार का थैला' नहीं, बल्कि लंबे समय तक चले वैचारिक विमर्श, विचारों और सार्थक चर्चाओं का परिणाम है। यह भारत की मूल भावनाओं, विविधता और लोकतांत्रिक मूल्यों को समाहित करता है। इसमें उन नेताओं की दूरदर्शिता दिखाई देती है, जिन्होंने विविधता में एकता, स्वतंत्रता के साथ समानता और परंपरा के साथ आधुनिकता का समन्वय करने का प्रयास किया। संविधान सभा ने लंबी और गंभीर चर्चाओं के बाद भारतीय संविधान को अंतिम रूप दिया। यही कारण है कि बदलते समय और परिस्थितियों के अनुरूप संवैधानिक संशोधनों तथा न्यायिक व्याख्याओं के बावजूद संविधान अपने मूल सिद्धांतों और उद्देश्यों पर कायम है। भरत के सभी नागरिकों के लिए भारतीय संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि आधुनिक भारत के निर्माण, उसके वैचारिक विकास और लोकतांत्रिक मूल्यों का ऐतिहासिक अभिलेख है। यह एक जीवंत दस्तावेज है, जो वर्तमान की आवश्यकताओं के अनुरूप मार्गदर्शन करते हुए विकसित भारत 2047 के लक्ष्य को साकार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

## 1.16 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. संविधान सभा के अध्यक्ष कौन थे?
   - A. डॉ. बी.आर. अंबेडकर
   - B. राजेंद्र प्रसाद
   - C. जवाहरलाल नेहरू
   - D. सरदार पटेल
2. भारत की संविधान सभा का गठन कब हुआ था?
   - A. 26 जनवरी 1950
   - B. 15 अगस्त 1947
   - C. 9 दिसंबर 1946
   - D. 26 नवंबर 1949
3. भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष कौन थे?
   - A. राजेंद्र प्रसाद
   - B. बी.एन. राव
   - C. जवाहरलाल नेहरू
   - D. डॉ. बी.आर. अंबेडकर
4. भारत का संविधान कब अपनाया गया था?

A. 15 अगस्त 1947

B. 26 जनवरी 1950

C. 26 नवंबर 1949

D. 9 दिसंबर 1946

5. संविधान सभा का प्रस्ताव किस योजना ने दिया था?

A. माउंटबेटन योजना

B. क्रिप्स मिशन

C. कैबिनेट मिशन योजना

D. साइमन कमीशन

6. संविधान सभा में प्रारंभ में कितने सदस्य थे?

A. 292

B. 389

C. 318

D. 250

7. संविधान सभा के संवैधानिक सलाहकार कौन थे?

A. के.एम. मुंशी

B. सरदार पटेल

C. बी.एन. राव

D. अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर

8. प्रारूप समिति का गठन कब हुआ था?

A. 29 अगस्त 1947

B. 26 नवंबर 1949

C. 15 अगस्त 1947

D. 9 दिसंबर 1946

9. निम्नलिखित में से किसने भारतीय संविधान को सबसे अधिक प्रभावित किया?

A. अमेरिकी संविधान

B. फ्रांसीसी संविधान

C. ब्रिटिश संसदीय प्रणाली

D. रूसी संविधान

10. संविधान सभा में 'उद्देश्य प्रस्ताव' किसने प्रस्तुत किया?

A. महात्मा गांधी

B. डॉ. बी.आर. अंबेडकर

C. जवाहरलाल नेहरू

D. राजेंद्र प्रसाद

11. संविधान सभा में कितनी महिलाएँ सदस्य थीं?

A. 10

B. 12

C. 15

D. 17

12. भारत ने मौलिक अधिकारों का विचार किस देश से लिया?

A. यूनाइटेड किंगडम

B. संयुक्त राज्य अमेरिका

C. यूएसएसआर (USSR)

D. फ्रांस

13. संविधान सभा में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों का विरोध किसने किया?

A. डॉ. बी.आर. अंबेडकर

B. मौलाना आज़ाद

C. सरदार वल्लभभाई पटेल

D. जवाहरलाल नेहरू

14. संविधान सभा के उपाध्यक्ष कौन थे?

A. डॉ. बी.आर. अंबेडकर

B. जवाहरलाल नेहरू

C. एच.सी. मुखर्जी

D. के.एम. मुंशी

15. भारत का संविधान कब लागू हुआ?

A. 26 नवंबर 1949

B. 15 अगस्त 1947

C. 26 जनवरी 1950

D. 9 दिसंबर 1946

16. भारतीय संविधान हस्तलिखित रूप में किस भाषा (भाषाओं) में लिखा गया था?

A. केवल अंग्रेज़ी

B. केवल हिंदी

C. अंग्रेज़ी और हिंदी

D. संस्कृत और हिंदी

17. स्वतंत्र भारत के प्रथम विधि मंत्री कौन थे?

A. जवाहरलाल नेहरू

B. डॉ. बी.आर. अंबेडकर

C. राजेंद्र प्रसाद

D. सरदार पटेल

18. संविधान सभा की बहसों में किस सदस्य ने अल्पसंख्यकों के संरक्षण पर बल दिया?

A. महात्मा गांधी

B. डॉ. बी.आर. अंबेडकर

C. राजेंद्र प्रसाद

D. जवाहरलाल नेहरू

19. भारत ने राज्य के नीति निदेशक तत्वों का विचार किस देश से लिया?

A. अमेरिका (USA)

B. ब्रिटेन (UK)

C. आयरलैंड

D. यूएसएसआर (USSR)

20. निम्नलिखित में से कौन-सा भारतीय संविधान की प्रकृति का सर्वोत्तम वर्णन करता है?

A. संघीय

B. एकात्मक

C. एकात्मक झुकाव वाला संघीय

D. पूर्णतः एकात्मक

## 1.17 बहुविकल्पीय प्रश्नों (MCQs) के उत्तर

1. B
2. C
3. D
4. C
5. C
6. B
7. C
8. A
9. C
10. C
11. C
12. B
13. C
14. C
15. C
16. C
17. B
18. B
19. C
20. C

## 1.18 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री


- Austin, Granville (1999). *The Indian Constitution: Cornerstone of Nation*, New Delhi: OUP. Pp. 1-62, 384-411. हिंदी में भी उपलब्ध

- Asha Sarangi, Sudha Pai. (2011). - *Interrogating Reorganisation of States: Culture*, *Identity and Politics in India*, Routledge India
- Abraham, Itti (2008), Foreign policy of India. Commonwealth & Comparative Politics Vol. 46, No. 2, April 2008, pp195–219.
- Frankel, Francine R. (2005). *India's Political Economy*. New Delhi: OUP. अध्याय 1, 3, 4
- Kohli, Atul (2006). *"Politics of Economic Growth in India, 1980-2005: Part I: The 1980s"*. EPW, Vol. 41(13), April 1-7, 2006, pp 1251-1259
- Chadha, G.K. Khurana, M.R. (1989). *Backward Agriculture, Unrewarded Labour and Economic Deprivation: Bihar's Contrast with Punjab. EPWI*, Nov 25, 1989, pp. 2617 - 2623
- Roy, Tirthankar. *Indian Economy after Independence: Economic History of India 1857-2010*. [अध्याय-13].
- Pai, Sudha and Asha Sarangi, *Interrogating Reorganisation of State, Culture, identity and politics*, Introduction, Forward by BG Vargese.

## इकाई – 2

# राजनीति और समाज के प्रमुख रुझान

## संरचना


2.1 उद्देश्य

2.2 परिचय

2.3 दल प्रणाली की बदलती प्रकृति

- 2.3.1 कांग्रेस का वर्चस्व (1952–1967)
- 2.3.2 कांग्रेस के वर्चस्व का पतन (1967–1989)
- 2.3.3 भारतीय जनसंघ (1951) और भाजपा का गठन (1980)
- 2.3.4 क्षेत्रीय दलों का उदय
- 2.3.5 वामपंथी दल
- 2.3.6 गठबंधन की राजनीति
- 2.3.7 आपातकाल (1975–1977)

2.4 जन आंदोलन

- 2.4.1 दलित आंदोलन
- 2.4.2 आदिवासी (जनजातीय) आंदोलन
- 2.4.3 श्रमिक आंदोलन
- 2.4.4 किसान आंदोलन

2.5 महिला आंदोलन और संस्थागत परिवर्तन

- 2.5.1 महिला आंदोलन
- 2.5.2 व्यक्तिगत कानूनों पर बहसें
- 2.5.3 महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को संबोधित करने वाले कानून (1990 तक)

2.6 अंतर्संबंध और प्रभाव

2.7 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

2.8 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री


## 2.1 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा उद्देश्य आपको 1947 के बाद की राजनीति और समाज के प्रमुख रुझानों की अंतर्दृष्टि प्रदान करना है। इस इकाई के अंत तक आप इस योग्य हो जाएँगे कि–

- 1950 से 1990 के बीच भारतीय दल प्रणाली के एकदलीय वर्चस्व से बहुदलीय ढाँचे तक के विकास को समझ सकें।
- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) के प्रभाव में रूपांतरण तथा भारतीय जनसंघ का उदय।
- क्षेत्रीय और वामपंथी दलों के उदय तथा भारतीय राजनीति पर उनके प्रभाव की जाँच कर सकें।
- गठबंधन की राजनीति की गतिशीलता और आपातकाल (1975–1977) के महत्व का अन्वेषण कर सकें।
- दलित, आदिवासी, श्रमिक और किसान आंदोलनों सहित जन आंदोलनों की सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन को आकार देने में भूमिका का अध्ययन कर सकें।
- व्यक्तिगत कानूनों पर बहसों और महिलाओं के विरुद्ध अत्याचारों को संबोधित करने वाले कानूनों सहित महिला आंदोलन और संस्थागत परिवर्तनों का मूल्यांकन कर सकें।
- इस अवधि में समकालीन भारत को आकार देने में राजनीतिक और सामाजिक रुझानों की पारस्परिक क्रिया का आकलन कर सकें।

## 2.2 परिचय

स्वतंत्रता के बाद भारत को एक केंद्रीकृत राजनीतिक संरचना विरासत में मिली, जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस शक्ति के रूप में उभरी। तथापि, यह वर्चस्व प्रायः वैचारिक विविधता की कीमत पर आया, क्योंकि सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर आधारित वैकल्पिक दृष्टिकोणों को हाशिये पर धकेल दिया गया। इस प्रकार दल प्रणाली के विकास को कांग्रेस के आधिपत्य के क्रमिक क्षरण तथा राष्ट्रवादी, क्षेत्रीय और वैचारिक विकल्पों के उभार के रूप में देखा जा सकता है।

1950 से 1990 तक की दौर भारत के राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य में एक परिवर्तनकारी युग था। 1947 में स्वतंत्रता के बाद भारत ने विविध सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक चुनौतियों के बीच एक लोकतांत्रिक गणराज्य की स्थापना की यात्रा आरंभ की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) ने आरंभ में राजनीतिक क्षेत्र पर वर्चस्व बनाए रखा, किंतु भारतीय जनसंघ (बाद में भाजपा) जैसे विपक्षी दलों, क्षेत्रीय दलों और वामपंथी दलों के उदय ने बहुदलीय प्रणाली की ओर बदलाव का संकेत दिया। आपातकाल (1975–1977) का लागू किया जाना एक निर्णायक मोड़ था जिसने भारत की लोकतांत्रिक सहनशीलता की परीक्षा ली। साथ ही, दलितों, आदिवासियों, श्रमिकों और किसानों के आंदोलनों सहित जन आंदोलनों ने सामाजिक पदानुक्रमों को चुनौती दी और समावेशन की माँग की। महिला आंदोलन ने गति पकड़ी और लैंगिक समानता तथा कानूनी सुधारों, विशेषकर व्यक्तिगत कानूनों और अत्याचारों से सुरक्षा के क्षेत्र में, वकालत की। यह इकाई इन प्रमुख रुझानों, उनके अंतर्संबंधों और भारत की राजनीतिक व्यवस्था और समाज पर उनके स्थायी प्रभाव की पड़ताल करती है।

## 2.3 दल प्रणाली की बदलती प्रकृति

दल प्रणालियों के अध्ययन ने अब तक दो विपरीत परिघटनाओं पर ध्यान केंद्रित किया है: एक

ओर द्विदलीय या बहुदलीय प्रणाली और दूसरी ओर "एकदलीय प्रणाली"। भारतीय दल प्रणाली को एकदलीय वर्चस्व वाली प्रणाली कहा जा सकता है, जो एकदलीय प्रणाली से बहुत भिन्न है। 1952 के प्रथम आम चुनाव से लेकर मार्च 1977 के छठे आम चुनाव तक कांग्रेस ने अपने नेतृत्व की गहराई और संगठनात्मक क्षमता के आधार पर केंद्र और अधिकांश भारतीय राज्यों पर लगातार शासन किया। 'रजनी कोठारी' द्वारा 1952–1967 के कांग्रेस के वर्चस्व को 'कांग्रेस प्रणाली' नाम दिया गया। यह एक प्रतिस्पर्धी दल प्रणाली थी, जिसमें 'सहमति का दल' और 'दबाव का दल' दोनों शामिल थे। कांग्रेस पार्टी 'दबाव' और 'सर्वसम्मति' के सिद्धांत पर कार्य करने वाली पार्टी रही है, जिसमें उसके विभिन्न संगठन और नेता अपनी माँगों के लिए दबाव डालते हैं, जिन पर उसकी राष्ट्रीय कार्यसमिति द्वारा सर्वसम्मति से निर्णय लिया जाता है।

राजनीतिक वैज्ञानिकों 'लॉयड रुडोल्फ' और 'सुज़ैन रुडोल्फ' के अनुसार, कांग्रेस पार्टी ने सर्वसम्मति बनाते समय मध्यम मार्ग अपनाया। 'दबाव' और 'सर्वसम्मति' से निर्णय लेने की खूबी के कारण कांग्रेस ने स्वतंत्रता के बाद तीन दशकों तक भारत की मुख्य पार्टी और विपक्ष, दोनों की भूमिका निभाई। मॉरिस-जोंस ने 1950–1967 के चरण का वर्णन इसी प्रकार करते हुए इसे "प्रतिस्पर्धा के साथ सह-अस्तित्व, किंतु विकल्प की दौड़ के बिना" कहा। किंतु धीरे-धीरे इस सर्वोच्चता को चुनौती मिलने लगी, क्योंकि कांग्रेस स्वतंत्रता संग्राम की राष्ट्रीय पार्टी के रूप में अपनी विरासत खोने लगी। प्रधानमंत्री 'जवाहरलाल नेहरू' और प्रधानमंत्री 'लाल बहादुर शास्त्री' के निधन के बाद कांग्रेस को नेतृत्व संकट का सामना करना पड़ा। प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के निधन के बाद नए प्रधानमंत्री के चुनाव को लेकर कांग्रेस संगठन के वरिष्ठ सदस्यों, जिन्हें ''सिंडिकेट'' कहा जाता था, और युवा कांग्रेस के नेताओं के बीच दरार पैदा हो गई। "सिंडिकेट" के नेता प्रधानमंत्री 'जवाहरलाल नेहरू' की पुत्री इंदिरा गाँधी को नया प्रधानमंत्री बनाना चाहते थे, जबकि युवा वर्ग 'मोरारजी देसाई' के पक्ष में था।

इंदिरा गाँधी के नए प्रधानमंत्री के रूप में निर्वाचित होने के बाद पार्टी के भीतर के विवाद अधिक खुले रूप से सामने आ गए, जिसे राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में देखा जा सकता है। इसके साथ ही 1969 और कांग्रेस में विभाजित हो गई। इंदिरा गाँधी ने गांधी-नेहरू परिवार के वफ़ादारों को पार्टी की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में नियुक्त करने की परंपरा शुरू की, जिससे गाँधी - नेहरू परिवार की नीतियों से असहमत नेताओं के लिए कोई जगह नहीं बची। इसी कारण धीरे-धीरे एक-एक कर क्षेत्रीय नेताओं ने कांग्रेस छोड़ी और अपने क्षेत्रीय दल बनाए, जैसे TMS, NCP, YSR कांग्रेस, तेलंगाना राष्ट्र समिति, बीजू जनता दल और अनगिनत छोटे दल। इसके परिणामस्वरूप भारत की राजनीति में क्षेत्रीय दलों का तेज़ी से उदय हुआ और कांग्रेस चुनाव-दर-चुनाव सत्ता से दूर होती गई।

रजनी कोठारी ने 1974 में 'कांग्रेस की कार्य प्रणाली' पर पुनर्विचार किया और प्रस्तावित किया कि यह प्रणाली, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में ही, अब भी काम कर रही थी, क्योंकि उसमें अब भी सर्वसम्मति और दबाव की विशेषताएँ मौजूद थीं। 1977 रजनी कोठारी द्वारा वर्णित 'कांग्रेस प्रणाली' के अंत की शुरुआत का वर्ष था, जो 1967 से ही चुनौतियों का सामना कर रही थी, जब कांग्रेस पहली बार आठ राज्यों में सत्ता से बाहर हुई। तथापि, उन्होंने स्वीकार किया कि 1967 के बाद कांग्रेस का वर्चस्व "काफ़ी हद तक घट गया" था।

1967 में कांग्रेस को राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर चुनौतियाँ मिलने लगीं, कांग्रेस को पहली चुनौती मिली और उसके साथ कांग्रेस ने अपनी सर्वोच्चता पूरी तरह खो दी। कांग्रेस पार्टी का यह मॉडल तीन दशकों तक चला, किंतु यह चरण तब समाप्त हो गया जब प्रधानमंत्री 'इंदिरा गाँधी' ने पार्टी की बागडोर संभाली। 'रुडोल्फ और रुडोल्फ' दर्शाते हैं कि 'इंदिरा गाँधी ' के नेतृत्व में कांग्रेस ने 1980 के लोकसभा चुनावों में भारी जीत हासिल की, किंतु कांग्रेस की एकतरफ़ा सर्वोच्चता का युग समाप्त हो चुका था।

1989 में गठबंधन की राजनीति के उदय ने कांग्रेस प्रणाली का अंत कर दिया। किंतु कांग्रेस के बिना भारतीय राजनीति की कल्पना करना कठिन है, जो एक महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति बनी हुई है। प्रधानमंत्री 'राजीव गाँधी' की हत्या के बाद पार्टी में राजनीतिक शून्य उत्पन्न हुआ, किंतु केंद्र में 'पी.वी. नरसिम्हा राव' प्रधानमंत्री बने और 1997-98 में कांग्रेस ने संयुक्त मोर्चा सरकार का भी समर्थन किया। श्रीमती 'सोनिया गाँधी' और 'राहुल गाँधी' के आगमन ने कांग्रेस का चेहरा बदल दिया और 'राजीव गांधी' के निधन के बाद पार्टी को हुए नुकसान की भरपाई की। पार्टी ने 2004 और फिर 2009 में केंद्र में UPA गठबंधन सरकार का नेतृत्व किया, जिसमें उसे 206 सीटें मिलीं। किंतु वह लंबे समय तक स्वयं को बचा नहीं सकी और 2014 के लोकसभा चुनावों में हार गई। 2019 के लोकसभा चुनावों में पार्टी ने 421 में से लगभग 88 प्रतिशत (369) सीटें गँवा दीं।

### 2.3.1 कांग्रेस का वर्चस्व (1952–1967)

स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व करने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्वतंत्र भारत में प्रमुख राजनीतिक शक्ति के रूप में उभरी। जवाहरलाल नेहरू (1947–1964) के नेतृत्व में कांग्रेस ने योजना आयोग और पंचवर्षीय योजनाओं की स्थापना सहित समाजवादी नीतियाँ लागू कीं, जिनसे मिश्रित अर्थव्यवस्था और पंथनिरपेक्ष राज्य को बढ़ावा मिला। राजनीतिक वैज्ञानिक रजनी कोठारी द्वारा वर्णित "कांग्रेस प्रणाली" की विशेषता एकदलीय वर्चस्व का मॉडल थी, जिसमें कांग्रेस एक व्यापक आधार वाली, मध्यमार्गी पार्टी के रूप में विविध हितों को समायोजित करती थी। उसने पहले तीन आम चुनावों (1951–52, 1957 और 1962) में बहुमत प्राप्त किया और लोकसभा की 70% से अधिक सीटें जीतीं। पार्टी की संगठनात्मक शक्ति, जो उसकी राष्ट्रवादी विरासत में निहित थी, ने उसे राष्ट्रीय और राज्य, दोनों स्तरों की राजनीति पर हावी रहने में सक्षम बनाया। तथापि, आंतरिक गुटबाज़ी और क्षेत्रीय चुनौतियों ने 1960 के दशक के मध्य तक उसके वर्चस्व को क्षीण करना शुरू कर दिया।

1952 और 1967 के बीच कांग्रेस ने "प्रणाली दल" के रूप में कार्य किया और अपनी संगठनात्मक पहुँच तथा स्वतंत्रता संग्राम की विरासत के बल पर सत्ता पर एकाधिकार बनाए रखा। फिर भी, दक्षिणपंथी दृष्टिकोण से, इस वर्चस्व ने वास्तविक वैचारिक बहस को दबा दिया। नेहरूवादी समाजवाद और पंथनिरपेक्षता ने परंपरावादी और राष्ट्रवादी वर्गों को अलग-थलग कर दिया, जबकि अति-केंद्रीकरण ने तृणमूल स्तर के लोकतंत्र को कमज़ोर किया और भारत के सभ्यतागत लोकाचार की उपेक्षा की।

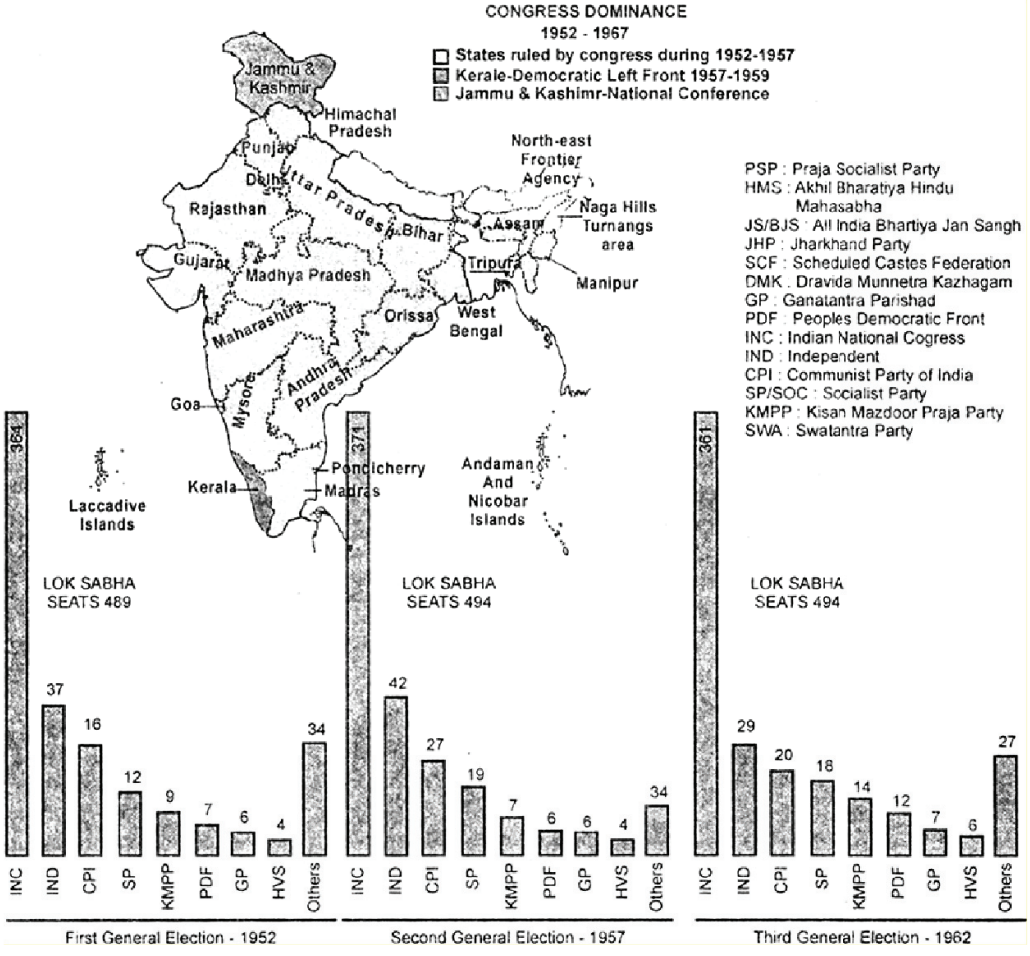
#### पहले तीन आम चुनावों में कांग्रेस का वर्चस्व

भारत का पहला आम चुनाव कोई आश्चर्य नहीं था, क्योंकि सभी को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के

जीतने की उम्मीद थी। देशभर में उसकी मज़बूत उपस्थिति थी और उसके नेता जवाहरलाल नेहरू बहुत लोकप्रिय थे। जब परिणाम आए, तो कांग्रेस ने 489 में से 364 सीटें जीतीं, जो किसी भी अन्य पार्टी से कहीं अधिक थीं। उसी समय हुए राज्य चुनावों में भी कांग्रेस ने लगभग सभी राज्यों में जीत हासिल की। नेहरू प्रधानमंत्री बने। अगले दो चुनावों में कांग्रेस का वर्चस्व जारी रहा और उसने हर बार तीन-चौथाई सीटें जीतीं। इसका आंशिक कारण हमारी मतदान प्रणाली की कार्यप्रणाली थी। यद्यपि कांग्रेस को आधे वोट भी नहीं मिले, फिर भी उसने अधिकांश सीटें जीत लीं, क्योंकि उसे किसी भी अन्य एकल पार्टी से अधिक वोट मिले। अन्य दलों को भी वोट मिले, किंतु वे विभिन्न उम्मीदवारों के बीच बँट गए, इसलिए कांग्रेस फिर भी शीर्ष पर रही।

## पहला आम चुनाव: एक भारी जीत

1952 में पहले आम चुनाव का परिणाम काफ़ी हद तक अपेक्षित था, जिसमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस अग्रणी के रूप में उभरी। कांग्रेस पार्टी के व्यापक संगठनात्मक नेटवर्क और नेहरू के करिश्माई नेतृत्व ने उसे एक भारी जीत दिलाई, जिसमें उसने लोकसभा की 489 में से 364 सीटें प्राप्त कीं।




स्रोत-

https://www.zigya.com/study/book?class=12&board=cbse&subject=Political+Science&book=Politics+In+India+Si nce+Independence

### निरंतर वर्चस्व : दूसरे और तीसरे चुनाव में सफलता

1957 और 1962 दोनों आम चुनावों में कांग्रेस ने भारतीय राजनीति पर अपनी पकड़ बनाए रखी और लोकसभा की तीन-चौथाई सीटें जीतीं। विपक्षी दलों ने उल्लेखनीय पैठ बनाने के लिए संघर्ष किया, और कोई भी कांग्रेस की चुनावी सर्वोच्चता को चुनौती नहीं दे सका।

कांग्रेस के वर्चस्व का पतन 1967 में शुरू हुआ, जब विपक्षी दलों ने कई राज्यों में सरकारें बनाईं। 1989 तक की यह अवधि कांग्रेस की अभिजात्य नीतियों, भ्रष्टाचार और सांस्कृतिक जड़ों की उपेक्षा के प्रति बढ़ते मोहभंग को दर्शाती है। आर्थिक ठहराव, बेरोज़गारी और पहचान-आधारित राजनीति ने उसकी वैधता को और क्षीण किया, जिससे वैकल्पिक राजनीतिक शक्तियों के लिए जगह बनी।

### चुनावी प्रणाली की गतिशीलता : कांग्रेस की जीत को बढ़ाना

लोकप्रिय मतों का बहुमत प्राप्त न करने के बावजूद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को सर्वाधिक वोट वाले की जीत (first-past-the-post) चुनावी प्रणाली से अनुपात से अधिक लाभ मिला। कुल वोटों के आधे से कम जीतने के बावजूद सीटों का एक बड़ा हिस्सा हासिल करने की कांग्रेस की क्षमता ने चुनावी प्रणाली के अंतर्निहित पूर्वाग्रहों को रेखांकित किया।

### सर्वाधिक वोट वाले की जीत (First-Past-the-Post) पद्धति की भूमिका

सर्वाधिक वोट वाले की जीत की पद्धति ने सर्वाधिक वोट पाने वाली पार्टी का पक्ष लिया, जिसके परिणामस्वरूप प्रायः सीटों का असंतुलित वितरण हुआ। गैर-कांग्रेसी दलों को सामूहिक रूप से अधिक वोट मिले, किंतु उनके विखंडित स्वरूप ने कांग्रेस को अपना वर्चस्व बनाए रखने दिया।

### शासन और प्रतिनिधित्व पर प्रभाव

कांग्रेस की भारी चुनावी जीतों का अर्थ राष्ट्रीय और राज्य, दोनों सरकारों पर व्यापक नियंत्रण था। तथापि, विधायी निकायों में असमानुपातिक प्रतिनिधित्व ने चुनावी प्रक्रिया की लोकतांत्रिक वैधता के बारे में चिंताएँ उत्पन्न कीं।

1952 से 1962 तक का युग भारतीय राजनीति में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के निर्विरोध वर्चस्व का साक्षी रहा। अपनी संगठनात्मक क्षमता और करिश्माई नेतृत्व का लाभ उठाते हुए कांग्रेस ने पहले तीन आम चुनावों में भारी जीत हासिल की और देश के शासन पर अपनी पकड़ मज़बूत की। चुनावी प्रणाली के पूर्वाग्रहों की आलोचनाओं के बावजूद कांग्रेस के वर्चस्व ने भारत की लोकतांत्रिक यात्रा के आरंभिक वर्षों की जटिलताओं को रेखांकित किया।

## 2.3.2 कांग्रेस के वर्चस्व का पतन (1967–1989)

1967 के चुनाव एक मोड़ साबित हुए, जिनमें कांग्रेस खाद्य संकट और मुद्रास्फीति जैसी आर्थिक चुनौतियों तथा आंतरिक गुटबाज़ी के कारण कई राज्यों में सत्ता से बाहर हो गई। 1964 में नेहरू और 1966 में लाल बहादुर शास्त्री के निधन से नेतृत्व परिवर्तन हुए, और 1966 में इंदिरा गाँधी ने सत्ता संभाली। उनके नेतृत्व ने आरंभ में कांग्रेस की स्थिति को मज़बूत किया, किंतु पार्टी में विभाजनों (जैसे 1969 में कांग्रेस (R) और कांग्रेस (O) के बीच विभाजन) ने उसकी संगठनात्मक

एकजुटता को कमज़ोर कर दिया। आपातकाल के बाद 1977 के चुनावों में कांग्रेस पहली बार केंद्र में जनता पार्टी गठबंधन के हाथों सत्ता खो बैठी, जो एकदलीय वर्चस्व के अंत का संकेत था। 1980 के दशक तक कांग्रेस को उभरते विपक्षी दलों से प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा और उसका वोट प्रतिशत घटा, विशेषकर 1989 के चुनावों के बाद, जिन्होंने गठबंधन सरकारों के युग का सूत्रपात किया।

**विपक्षी और क्षेत्रीय दलों का उदय :-** प्रधानमंत्री 'जवाहरलाल नेहरू' और प्रधानमंत्री 'लाल बहादुर शास्त्री' के समय तक सशक्त विपक्ष के अभाव के कारण कांग्रेस पार्टी अपनी सर्वोच्चता बनाए रखने में सक्षम रही। किंतु उनके निधन के बाद, जब 'इंदिरा गांधी' प्रधानमंत्री के रूप में सामने आईं, तो पार्टी के पुराने नेताओं के साथ उनके मतभेद उभरने लगे। अनेक बातों पर असहमति के कारण कई नेताओं ने कांग्रेस पार्टी छोड़ दी और नए दल बने, जिससे धीरे-धीरे कांग्रेस पार्टी कमज़ोर हुई और क्षेत्रीय तथा विपक्षी दल मज़बूत हुए। इससे राज्य के साथ-साथ केंद्र स्तर पर भी गठबंधन सरकार का उदय शुरू हुआ।

**गठबंधन वाली सरकारों के दौर का उदय हुआ :-** कांग्रेस ने सदैव प्रतिभा की तुलना में वरिष्ठता और वंश को प्राथमिकता दी है। उदाहरण: 'सचिन पायलट' और 'ज्योतिरादित्य सिंधिया' के स्थान पर 'अशोक गहलोत' को राजस्थान का मुख्यमंत्री और 'कमल नाथ' को मध्य प्रदेश का मुख्यमंत्री चुना जाना। इसके विपरीत, 'नरेंद्र मोदी' ने 'देवेंद्र फडणवीस', 'योगी आदित्यनाथ', 'मनोहर लाल खट्टर', 'सर्बानंद सोनोवाल', 'जयराम ठाकुर' और 'बिप्लब कुमार देब' जैसे नए और युवा नेताओं को मुख्यमंत्री नियुक्त किया है। राहुल गाँधी ने 'अशोक गहलोत' को राजस्थान का मुख्यमंत्री बनाया। इसका विरोध करते हुए उन्होंने कहा कि गहलोत को मुख्यमंत्री बनाने के लिए उन पर संगठन के वरिष्ठ नेताओं का दबाव था, जबकि वे युवा 'सचिन पायलट' को मुख्यमंत्री बनाना चाहते थे। (कुमार, 2016)

**नेहरू-गाँधी परिवार का वर्चस्व :-** पिछले कुछ दशकों में कांग्रेस नेहरू-गाँधी परिवार की उलझन बन गई है। परिवार से बाहर के किसी नेता को पार्टी का नेतृत्व करते हुए नहीं देखा जा सकता। संभव है कि 'राहुल गांधी' के स्थान पर 'ए.के. एंटनी' या 'अशोक गहलोत' जैसे नेता पार्टी अध्यक्ष चुने जाएँ। 'सोनिया गांधी' ने 'प्रणब मुखर्जी' जैसे सक्षम व्यक्ति पर कभी भरोसा नहीं किया। इस कारण कांग्रेस को अच्छे राजनीतिक नेतृत्व के संकट का भी सामना करना पड़ा है।

**भ्रष्टाचार और घोटालों के आरोप :-** UPA का कार्यकाल भ्रष्टाचार और घोटालों से चिह्नित था। कोयला घोटाले, राष्ट्रमंडल खेल घोटाले और 3G स्पेक्ट्रम घोटाले ने उस आम जनता में मोहभंग पैदा किया जो स्वच्छ और पारदर्शी शासन चाहती थी। बढ़ती मुद्रास्फीति और बेरोज़गारी, आर्थिक मंदी और नीतिगत पंगुता ने जनता की नज़रों में कांग्रेस और उसके सहयोगियों की छवि को बहुत हद तक प्रभावित किया।

**नए युग की राजनीति से पिछड़ापन :-** कांग्रेस अब भी मंडल युग की जातिगत लामबंदी और धार्मिक तुष्टीकरण की राजनीति में फँसी हुई है। चुनाव जीतने के लिए कांग्रेस प्रशासनिक प्रदर्शन की अपेक्षा एक वफ़ादार वोट बैंक पर अधिक निर्भर करती है। जबकि भाजपा सरकार ने सभी वर्गों के लिए आकर्षक नीतियाँ बनाईं।

**चुनावी प्रणाली :-** भारत की 'सर्वाधिक वोट वाले की जीत' (first-past-the-post) प्रणाली में चुनावों में प्राप्त मतों के अनुपात में प्रतिनिधित्व या सीटें नहीं दी जातीं। इसीलिए, कांग्रेस के वर्चस्व के वर्षों में भी, 1952 से 1967 तक, जब कांग्रेस के पास संसद में 70 प्रतिशत से अधिक सीटें थीं, कांग्रेस को संसद या राज्य विधानमंडलों में कुल मिलाकर कभी 50 प्रतिशत से अधिक वोट नहीं मिले। (रुडोल्फ और रुडोल्फ, 1987) चुनावों में कांग्रेस का वर्चस्व, कांग्रेस के पतन की ही तरह, 'सर्वाधिक वोट वाले की जीत' चुनावी प्रणाली के असमान परिणामों से बढ़ा-चढ़ाकर दिखा है।

### 2.3.3 भारतीय जनसंघ और भाजपा का उदय

1951 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा स्थापित भारतीय जनसंघ (BJS) ने उस चीज़ की आधारशिला रखी जो आगे चलकर भारत की सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक शक्तियों में से एक — भारतीय जनता पार्टी (BJP) — बनी। दशकों के दौरान, BJS से BJP तक की यात्रा वैचारिक विकास, राजनीतिक रणनीति और ऐसे प्रमुख व्यक्तियों के महत्वपूर्ण योगदान से चिह्नित रही है जैसे

श्यामा प्रसाद मुखर्जी, बलराज मधोक और दीनदयाल उपाध्याय — इन नेताओं द्वारा निभाई गई निर्णायक भूमिकाएँ, साथ ही इस विश्लेषण के साथ कि यह राजनीतिक इकाई विशेषकर 2014 के बाद से भारतीय राजनीति पर कैसे हावी होने में सफल रही है। भारतीय जनसंघ की स्थापना 21 अक्टूबर 1951 को डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने की थी। यह पार्टी उस स्थिति की प्रतिक्रिया के रूप में उभरी जिसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा सत्ता के अति-केंद्रीकरण और नेहरूवादी समाजवाद के वर्चस्व के रूप में देखा जा रहा था। कांग्रेस के पूर्व मंत्री और प्रमुख नेता मुखर्जी ने एक ऐसी पार्टी की परिकल्पना की जो हिंदू राष्ट्रवादी आदर्शों, आर्थिक राष्ट्रवाद और एक सशक्त, एकीकृत भारत को बढ़ावा दे।

भाजपा भारत की एक प्रमुख राजनीतिक पार्टी है। भाजपा हिंदू राष्ट्रवाद, आत्मनिर्भर और मुक्त-बाज़ार अर्थव्यवस्था का समर्थन करती है। 1964 में प्रधानमंत्री 'जवाहरलाल नेहरू' के निधन के कुछ महीनों बाद राजनीतिक वैज्ञानिक 'रजनी कोठारी' ने "भारत में कांग्रेस प्रणाली" शीर्षक से एक मौलिक लेख प्रकाशित किया। उसमें उन्होंने तर्क दिया कि भारत की राजनीतिक व्यवस्था की विशेषता "एकदलीय वर्चस्व" थी। यह पुरानी कांग्रेस प्रणाली, जो लगभग 'नेहरू' से 'नरसिम्हा राव' तक चली, स्वतंत्रता के 50 वर्ष बाद प्रणाली में परिवर्तन देखा गया।

लगातार दो लोकसभा चुनावों में भाजपा की भारी जीत ने भारत को एक नए युग में प्रवेश कराया है। कुछ पर्यवेक्षक प्रतिस्पर्धा के इस उभरते स्वरूप को एकदलीय वर्चस्व का दूसरा चरण बताते हैं, जबकि पहला चरण (1950 और 1960) के दशकों में राष्ट्रीय और राज्य राजनीति पर कांग्रेस के वर्चस्व की अवधि को संदर्भित करता है। दो दशकों के संक्रमण के बाद अब इसका स्थान 'नए भाजपा वर्चस्व' ने ले लिया है।

मुखर्जी का नेतृत्व पार्टी की मूल विचारधारा "एकात्म मानववाद" को स्पष्ट करने में सहायक रहा, जो व्यक्तिगत अधिकारों को सामाजिक कर्तव्यों के साथ संतुलित करने का प्रयास करती थी। 1953 में कश्मीर में एक विरोध प्रदर्शन के दौरान रहस्यमय परिस्थितियों में उनका असामयिक निधन पार्टी के लिए एक बड़ा आघात था, किंतु साथ ही एक प्रेरक क्षण भी, जिसने BJS की राष्ट्रीय

अखंडता और संप्रभुता के प्रति प्रतिबद्धता को रेखांकित किया। बलराज मधोक और संगठनात्मक निर्माण: मुखर्जी के निधन के बाद बलराज मधोक ने पार्टी की संगठनात्मक संरचना का विस्तार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इतिहासकार और शिक्षाविद् मधोक एक सुदृढ़ कैडर-आधारित संगठन के प्रबल समर्थक थे। BJS के अध्यक्ष के रूप में उनके कार्यकाल में पार्टी के आधार का सुदृढ़ीकरण हुआ, विशेषकर भारत के उत्तरी और पश्चिमी राज्यों में। BJS की बढ़ती चुनावी सफलता में मधोक के प्रयास सहायक रहे। उनके नेतृत्व में पार्टी 1952 से 1967 तक के क्रमिक चुनावों में अपने लोकप्रिय मतों और संसदीय सीटों का हिस्सा बढ़ाने में सफल रही। उन्होंने तृणमूल स्तर पर लामबंदी और पार्टी कार्यकर्ताओं के वैचारिक प्रशिक्षण पर बल दिया, जिससे एक समर्पित और वैचारिक रूप से प्रतिबद्ध आधार सुनिश्चित हुआ।

दीनदयाल उपाध्याय BJS के सबसे प्रभावशाली विचारकों में से एक थे, जिन्होंने 1965 में "एकात्म मानववाद" की अवधारणा प्रस्तुत की। इस दर्शन ने मानव जीवन के आध्यात्मिक और भौतिक आयामों को एकीकृत करके एक सामंजस्यपूर्ण समाज के निर्माण का प्रयास किया। उपाध्याय ने पश्चिमी पूँजीवाद और पूर्वी समाजवाद, दोनों के विरुद्ध तर्क दिया और इसके स्थान पर भारतीय संस्कृति और मूल्यों में निहित सामाजिक-आर्थिक ढाँचे का प्रस्ताव रखा। उपाध्याय का एकात्म मानववाद BJS और बाद में भाजपा की दार्शनिक आधारशिला बन गया। इसमें आत्मनिर्भरता, विकेंद्रीकृत शासन और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर बल दिया गया। 1968 में रहस्यमय परिस्थितियों में उपाध्याय का दुखद निधन एक बड़ी क्षति थी, किंतु उनके विचार पार्टी की नीतियों और रणनीतियों को आकार देते रहे।

**भारतीय जनता पार्टी में परिवर्तन :** प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी द्वारा लागू आपातकाल (1975-1977) भारतीय राजनीति में एक मोड़ था। लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और नागरिक स्वतंत्रताओं के निलंबन ने BJS सहित विपक्षी दलों को तानाशाही शासन के विरुद्ध एकजुट होने के लिए प्रेरित किया। इस अवधि में जनता पार्टी का गठन हुआ, जो एक गठबंधन था और जिसमें BJS शामिल था; उसने 1977 का आम चुनाव जीता और इंदिरा गाँधी के शासन का अंत किया।

तथापि, जनता पार्टी के भीतर वैचारिक और संगठनात्मक मतभेदों के कारण उसका विघटन हो गया। 1980 में पूर्व BJS के सदस्यों ने, अटल बिहारी वाजपेयी और लालकृष्ण आडवाणी जैसे नेताओं के नेतृत्व में, भारतीय जनता पार्टी (BJP) का गठन किया। भाजपा ने BJS के मूल वैचारिक सिद्धांतों को बनाए रखा, किंतु अधिक उदार रुख अपनाकर अपनी अपील का विस्तार करने का प्रयास किया।

**भाजपा का उदय 1980-1998 :** जनता पार्टी पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता और सत्ता की राजनीति का शिकार बन गई। सर्वोच्चता की होड़ में जनसंघ के कार्यकर्ताओं के विरुद्ध 'दोहरी सदस्यता' का प्रश्न उठाया गया। या तो जनसंघ के लोग जनता पार्टी छोड़ें या RSS से अपना संबंध समाप्त करें। इस मुद्दे पर जनसंघ के नेताओं ने जनता पार्टी छोड़ दी और 6 अप्रैल 1980 को पंच निष्ठाओं (पाँच प्रतिबद्धताओं) के आधार पर भारतीय जनता पार्टी (BJP) का गठन किया।

इंदिरा गाँधी 1980 का लोकसभा उपचुनाव पहले ही जीत चुकी थीं। जनता पार्टी के विभाजन के बाद कांग्रेस से लड़ने के लिए गैर-कांग्रेसी दलों को एक साथ लाने के प्रयास फिर किए गए। जनसंघ के नेता, जो 'एक बार जले, दो बार सतर्क' थे, बहुत सावधान थे और उन्हें लगता था कि

वे फिर कभी ऐसे गठबंधन में शामिल नहीं होंगे जो उनकी पहचान को प्रभावित करे। 31 अक्टूबर 1984 को इंदिरा गाँधी के एक निजी सुरक्षा गार्ड ने उनकी हत्या कर दी, जिससे व्यापक सिख-विरोधी दंगे भड़क उठे। जनसंघ और संघ के कार्यकर्ताओं ने उन सभी प्रयासों को विफल करने की सक्रिय कोशिश की, जिन्होंने हिंदुओं और सिखों के बीच शत्रुता पैदा की। तब भारत के राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह ने 31 अक्टूबर को राजीव गाँधी को प्रधानमंत्री पद की शपथ दिलाई। लोकसभा चुनावों की घोषणा हुई। देश की जनता ने श्रीमति इंदिरा गाँधी की मृत्यु की संवेदना में ''भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस'' पर उदारता रखी और राजीव गाँधी के नेतृत्व में (INC) 400 से ज्यादा सीटें जीतकर इतिहास बनाया। यह भारतीय जनता पार्टी का पहला चुनाव था जिसमें वह केवल दो सीटें ही जीत सकी।

पार्टी में एक आलोचनात्मक समीक्षा हुई। श्री कृष्ण लाल शर्मा के नेतृत्व में एक कार्य-दल गठित किया गया, जिसने सिफ़ारिश की कि 'एकात्म मानववाद' को पुनः पार्टी की मूल विचारधारा घोषित किया जाए। परिणामस्वरूप, अक्टूबर 1985 में गांधीनगर में हुई राष्ट्रीय कार्यकारिणी में इसे पार्टी के संविधान में शामिल किया गया। भाजपा को कैडर-आधारित संगठन बनाने का संकल्प लिया गया। 1986 में पार्टी की अध्यक्षता का दायित्व श्री लालकृष्ण आडवाणी पर आया।

श्री राजीव गाँधी 'मिस्टर क्लीन' की छवि के कारण बहुत लोकप्रिय हो रहे थे। भाजपा राजनीति के हाशिये पर धकेली जाती प्रतीत होती थी, किंतु यह वास्तविकता नहीं थी। 1987 में बोफ़ोर्स घोटाला सामने आया, जिसमें वरिष्ठ मंत्री श्री वी.पी. सिंह ने विद्रोह कर दिया। 'मिस्टर क्लीन' की छवि ध्वस्त हो गई।

शाहबानो मामले में उनकी अल्पसंख्यक वोट-बैंक की राजनीति उजागर हो गई। भाजपा कार्यकर्ताओं ने इस मुद्दे पर बड़े जन-जागरण कार्यक्रम आयोजित किए, और समान नागरिक संहिता की माँग फिर उठाई गई। जनवरी 1988 में भाजपा ने राजीव गाँधी के इस्तीफ़े और मध्यावधि चुनावों की घोषणा की माँग की। पूरे देश में सत्याग्रह हुए। 3 मार्च 1988 को श्री लालकृष्ण आडवाणी पुनः पार्टी के अध्यक्ष चुने गए। अगस्त 1988 में राष्ट्रीय मोर्चे का गठन हुआ और एन.टी. रामाराव उसके अध्यक्ष तथा वी.पी. सिंह संयोजक बने। यह जनता दल का जन्म था।

25 सितंबर 1989 को भाजपा और शिवसेना का गठबंधन बना। चुनाव परिणाम अपेक्षा के अनुरूप रहे। राजीव गाँधी सरकार सत्ता से बाहर कर दी गई। 1984 में भाजपा को दो सीटें मिली थीं, किंतु अब उसकी संख्या बढ़कर 86 हो गई। बोफ़ोर्स मुद्दे के साथ-साथ भाजपा ने इन चुनावों में 'सबके लिए न्याय, किसी का तुष्टीकरण नहीं' के नारे पर ध्यान केंद्रित किया। श्री लालकृष्ण आडवाणी पहली बार लोकसभा के लिए चुने गए।

जून 1989 में पालमपुर (हिमाचल प्रदेश) की राष्ट्रीय कार्यकारिणी में श्रीराम जन्मभूमि आंदोलन का समर्थन करने का निर्णय लिया गया। यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का एक ज्वलंत मुद्दा था। यह छद्म-पंथनिरपेक्षता और प्रत्येक धर्म के प्रति वास्तविक समान सम्मान के बीच संघर्ष था। आडवाणी जी की राम रथ यात्रा पं. दीनदयाल उपाध्याय की जयंती, 25 सितंबर, को सोमनाथ से आरंभ हुई और उसे 30 अक्टूबर को 'कार सेवा' में भाग लेने के लिए अयोध्या पहुँचना था। रथ यात्रा को लोगों का अभूतपूर्व समर्थन मिला।

23 अक्टूबर को रथ यात्रा को बिहार के समस्तीपुर में रोक दिया गया और श्री आडवाणी जी को वहाँ पाँच सप्ताह तक हिरासत में रखा गया। 30 अक्टूबर को सभी सरकारी प्रतिबंधों को ठुकराते हुए कारसेवा हुई। श्री चंद्रशेखर कांग्रेस के बाहरी समर्थन से प्रधानमंत्री बने और उन्होंने अयोध्या मुद्दे को सुलझाने का, ईमानदारी से किंतु असफल, प्रयास किया। राजीव गाँधी ने सात महीनों के भीतर उनकी सरकार से कांग्रेस का समर्थन वापस ले लिया। जुलाई 1991 में हुए उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनावों में भाजपा विजयी हुई। छद्म-पंथनिरपेक्षता पराजित हुई। श्री कल्याण सिंह मुख्यमंत्री बने। लोकसभा चुनावों के दौरान राजीव गाँधी की हत्या हो गई और कांग्रेस को सहानुभूति के वोट मिले। भाजपा की संख्या 86 से बढ़कर 119 हो गई। पी.वी. नरसिम्हा राव के नेतृत्व में कांग्रेस की सरकार बनी। राम मंदिर का मुद्दा सुलझाया नहीं जा सका और 6 दिसंबर 1992 की कार सेवा के दौरान विवादित ढाँचा कारसेवकों द्वारा ढहा दिया गया।

1996, 1998 और 1999 में तीन लोकसभा चुनाव हुए, जिनमें भाजपा सबसे बड़ी एकल पार्टी के रूप में उभरी। श्री अटल बिहारी वाजपेयी पहले 13 दिन, फिर 13 महीने और उसके बाद साढ़े चार वर्ष भारत के प्रधानमंत्री रहे। यह केवल भाजपा का नहीं, बल्कि NDA का शासन था। NDA 2004 के लोकसभा चुनाव हार गया।

**NDA का युग 1998-2004:** भाजपा की दृढ़ता का फल 1998 में मिला, जब उसने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) बनाया और अटल बिहारी वाजपेयी NDA घटक दल के नेता चुने गए और गठबंधन की सरकार का नेतृत्व किया। वाजपेयी जी का कार्यकाल शासन के प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण, आर्थिक सुधारों और पाकिस्तान के साथ संबंध सुधारने के प्रयासों के लिए याद किया जाता है। अटल जी के नेतृत्व में भारत ने 1998 में परमाणु परीक्षण किए और स्वयं को परमाणु शक्ति के रूप में स्थापित किया। सरकार ने दूरसंचार क्षेत्र के उदारीकरण और राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना की शुरुआत सहित महत्वपूर्ण आर्थिक सुधार भी आरंभ किए। इन उपलब्धियों के बावजूद भाजपा-नीत NDA 2004 के आम चुनाव हार गया। तथापि, पार्टी के कार्यकाल ने उसे कांग्रेस के एक विश्वसनीय विकल्प के रूप में स्थापित कर दिया था, और उसका शासन-मॉडल भारतीय राजनीति को प्रभावित करता रहा।

**प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में किए कार्य :-**

- **परमाणु परीक्षण और राष्ट्रीय सुरक्षा :** भारत ने 1998 में पोखरण-II परमाणु परीक्षण किए, जिससे देश परमाणु शक्ति के रूप में स्थापित हुआ, यद्यपि आरंभ में उसे अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों का सामना करना पड़ा, जिन्हें बाद में हटा लिया गया।
- **कारगिल युद्ध :** भारत 1999 में पाकिस्तान के साथ एक सैन्य संघर्ष में उलझा, जो युद्धविराम और भारतीय क्षेत्र से पाकिस्तानी सेनाओं की वापसी के साथ समाप्त हुआ।
- **आर्थिक सुधार :** सरकार ने आर्थिक सुधार लागू किए, जिनसे GDP वृद्धि लगभग दोगुनी हुई, मुद्रास्फीति में कमी आई और विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ा।
- **अवसंरचना :** राजमार्गों, रेलवे और हवाई अड्डों सहित अवसंरचना परियोजनाओं में महत्वपूर्ण निवेश किया गया।

- **सामाजिक और अन्य सुधार :**
    - **शिक्षा :** सार्वभौमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सर्व शिक्षा अभियान शुरू किया गया।
    - **स्वास्थ्य :** कवरेज बढ़ाने और रोगों से लड़ने के लिए स्वास्थ्य नीतियाँ लागू की गईं।
    - **खाद्य सुरक्षा :** सबसे गरीब परिवारों को लक्षित खाद्य सुरक्षा प्रदान करने के लिए अंत्योदय अन्न योजना शुरू की गई।
    - **पर्यटन :** पर्यटन उद्योग के विकास को बढ़ावा देने के लिए उसे निर्यात गृह (Export House) का दर्जा दिया गया।
- **विदेश नीति:**
    - 2000 में अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन की यात्रा ने भारत-अमेरिका संबंधों में उल्लेखनीय सुधार किया।

## पुनरुत्थान और वर्चस्व, 2014 से वर्तमान

2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा की सत्ता में वापसी ने एक नए युग की शुरुआत की। गुजरात के पूर्व मुख्यमंत्री मोदी ने आर्थिक विकास, सुशासन और सशक्त राष्ट्रीय सुरक्षा के मंच पर चुनाव प्रचार किया। उनके करिश्माई नेतृत्व और "नए भारत" के वादे ने देशभर के मतदाताओं को प्रभावित किया। 2014 के आम चुनावों में भाजपा ने ऐतिहासिक जनादेश प्राप्त किया और लोकसभा में स्पष्ट बहुमत हासिल किया। मोदी सरकार ने आर्थिक सुधारों, अवसंरचना विकास, डिजिटल इंडिया और मेक इन इंडिया जैसी डिजिटल पहलों, तथा स्वच्छ भारत और जन धन योजना जैसी कल्याणकारी योजनाओं पर ध्यान केंद्रित किया।

2019 के आम चुनावों में भाजपा की जीत ने उसके वर्चस्व को और सुदृढ़ किया। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के प्रति पार्टी की वैचारिक प्रतिबद्धता उसकी नीतियों में स्पष्ट थी, जैसे जम्मू-कश्मीर को विशेष दर्जा देने वाले अनुच्छेद 370 का निरसन और नागरिकता संशोधन अधिनियम का अधिनियमन।

दूरदर्शी संस्थापक श्यामा प्रसाद मुखर्जी की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और आर्थिक आत्मनिर्भरता पर आधारित एक सशक्त, एकीकृत भारत की दृष्टि थी, और उन्होंने BJS तथा बाद में भाजपा की वैचारिक नींव रखी। राष्ट्रीय संप्रभुता और अखंडता के प्रति उनकी प्रतिबद्धता, जिसका उदाहरण कश्मीर के विशेष दर्जे के विरुद्ध उनका विरोध है, भाजपा की नीति की आधारशिला बनी हुई है। एक विशिष्ट वैचारिक रुख को स्पष्ट करने और उसके लिए समर्थन जुटाने की मुखर्जी की क्षमता ने पार्टी की भविष्य की सफलता की नींव रखी। संगठनात्मक शिल्पकार बलराज मधोक का BJS की संगठनात्मक शक्ति में योगदान उसके आरंभिक वर्षों में निर्णायक था। कैडर-आधारित लामबंदी और वैचारिक प्रशिक्षण पर उनके ध्यान ने एक प्रतिबद्ध और अनुशासित पार्टी आधार सुनिश्चित किया। प्रारंभिक वर्षों में मधोक के नेतृत्व ने BJS को भारतीय राजनीति में पैर जमाने में मदद की, जिससे उसके एक राष्ट्रीय राजनीतिक शक्ति में रूपांतरित होने का मार्ग प्रशस्त हुआ।

वैचारिक स्तंभ दीनदयाल उपाध्याय ने ''एकात्म मानववाद'' की अवधारणा दी, जिसने वह दार्शनिक आधार प्रदान किया जिसने BJS और भाजपा को अन्य राजनीतिक दलों से अलग किया। भारतीय संस्कृति और मूल्यों में निहित सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की उनकी दृष्टि ने भारतीय जनमानस के एक व्यापक वर्ग को प्रभावित किया। उपाध्याय के विचार भाजपा की नीतियों को, विशेषकर आर्थिक राष्ट्रवाद और सामाजिक कल्याण के क्षेत्रों में, प्रभावित करते रहे हैं।

भारतीय जनसंघ से भारतीय जनता पार्टी तक की यात्रा एक उपलब्धि है। यह उसकी मूल विचारधारा की स्थायी अपील और उसके नेताओं की रणनीतिक कुशाग्रता का परिणाम है। 1951 में अपनी स्थापना से लेकर समकालीन भारतीय राजनीति में अपने वर्चस्व तक, BJS/भाजपा विकसित हुई है और साथ ही सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आर्थिक आत्मनिर्भरता और सशक्त राष्ट्रीय सुरक्षा के अपने मूल सिद्धांतों के प्रति निष्ठावान भी रही है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी, बलराज मधोक और दीनदयाल उपाध्याय जैसे नेताओं का योगदान पार्टी की विचारधारा और संगठनात्मक शक्ति को आकार देने में महत्वपूर्ण रहा है। आज, जब भाजपा भारतीय राजनीति और सार्वजनिक विमर्श को प्रभावित करना जारी रखे हुए है, यह स्पष्ट है कि नेहरूवादी प्रतिमान को चुनौती दी जा रही है और इसके संस्थापक नेताओं की दृष्टि साकार हो रही है। एक सीमांत राजनीतिक इकाई से भारतीय राजनीति की प्रमुख शक्ति बनने तक की भाजपा की यात्रा स्पष्ट वैचारिक दृष्टि और प्रभावी नेतृत्व की शक्ति को रेखांकित करती है। जैसे-जैसे भारत 21वीं सदी की जटिलताओं से गुज़र रहा है, उसके भविष्य को आकार देने में भाजपा की भूमिका निस्संदेह महत्वपूर्ण बनी रहेगी।

2024 के भारतीय आम चुनाव एक बार फिर भारतीय जनता पार्टी (BJP) की निर्णायक जीत में परिणत हुए, जो भारतीय राजनीति में उसके वर्चस्व की यात्रा का एक और अध्याय है। यह तीसरी बार की जीत न केवल पार्टी के शासन के प्रति मतदाताओं की स्वीकृति को दर्शाती है, बल्कि उसकी विचारधारा की स्थायी अपील को भी। भाजपा की विजय का श्रेय सांस्कृतिक राष्ट्रवाद, आर्थिक विकास और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में सशक्त नेतृत्व के प्रति उसकी अडिग प्रतिबद्धता को दिया जा सकता है।

### 2.3.4 क्षेत्रीय दलों का उदय

1960 और 1970 के दशकों में क्षेत्रीय दलों का उदय हुआ, जो भारत की भाषाई, सांस्कृतिक और क्षेत्रीय विविधता को दर्शाता था। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK), आंध्र प्रदेश में तेलुगु देशम पार्टी (TDP) और पंजाब में अकाली दल जैसे दलों ने क्षेत्रीय पहचानों और हितों की पैरवी करके प्रमुखता प्राप्त की। 1984 के चुनावों में TDP लोकसभा में मुख्य विपक्षी दल के रूप में उभरी, जिसने क्षेत्रीय शक्तियों के बढ़ते प्रभाव को उजागर किया। इन दलों ने प्रायः राष्ट्रीय दलों के साथ गठबंधन किए, जिसने 1980 और 1990 के दशकों की गठबंधन राजनीति को आकार दिया। क्षेत्रीय दलों का उदय कांग्रेस के केंद्रीकृत दृष्टिकोण से असंतोष और अधिक संघवाद की माँग को भी दर्शाता था।

अन्य क्षेत्रीय दल, जो अखिल भारतीय मंच अपनाते हैं और देश के सभी क्षेत्रों में उम्मीदवार उतारते हैं, किंतु केवल कुछ क्षेत्रों या राज्यों में ही सफलता पाते हैं, जैसे भारतीय राष्ट्रीय लोक

दल, ऑल इंडिया फॉरवर्ड ब्लॉक, रिवॉल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, समाजवादी पार्टी, नेशनल कांग्रेस पार्टी आदि। कुछ ऐसे दल हैं जो किसी राष्ट्रीय दल के विभाजन के परिणामस्वरूप बनते हैं, जिन्हें सामान्यतः 'टूटे हुए दल' (splinter parties) कहा जाता है। अंत में, कुछ दल ऐसे हैं जो व्यक्तिगत लोकप्रियता और नाम-पहचान वाले व्यक्तिगत राजनेताओं को मतपत्र तक पहुँचाने के माध्यम के रूप में उभरते हैं। तथापि, ये दल मुद्दों पर अपनी स्थिति परिभाषित करने और अपने करिश्माई नेता की छवि से आगे बढ़ने में संघर्ष करते हैं, और इसीलिए बहुत लंबे समय तक टिक नहीं पाते। कुछ अधिक उल्लेखनीय उदाहरणों में लोक जनशक्ति पार्टी और हरियाणा विकास पार्टी शामिल हैं।

क्षेत्रीय दलों और गठबंधन राजनीति के उदय के परिणामस्वरूप केंद्र-राज्य संबंध तनाव का कारण बन गए हैं, जिसमें क्षेत्रीय दल केंद्र सरकार से अधिक वित्तीय और राजनीतिक स्वायत्तता की निरंतर माँग करते रहते हैं। संविधान लागू होने के बाद कई वर्षों तक केंद्र-राज्य संबंध काफ़ी हद तक सुचारु और संघर्ष-रहित रहे, क्योंकि केंद्र और राज्य में एक ही पार्टी का राजनीति पर वर्चस्व था।

### 2.3.5 वामपंथी दल

वामपंथी दल, मुख्यतः भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (CPI) और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) (CPI(M)), ने भारतीय राजनीति में, विशेषकर पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा जैसे राज्यों में, महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1925 में स्थापित CPI और 1964 में विभाजन के बाद बनी CPI(M) ने समाजवादी नीतियों, भूमि सुधारों और श्रमिकों के अधिकारों की वकालत की। CPI(M)-नीत वाम मोर्चे ने 1977 से 2011 तक पश्चिम बंगाल पर शासन किया, भूमि सुधार लागू किए और ग्रामीण विकास को बढ़ावा दिया। वामपंथी दलों ने प्रायः कांग्रेस-नीत गठबंधनों (जैसे 2004 में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन) का समर्थन किया, किंतु अपनी वैचारिक स्वतंत्रता बनाए रखी। राष्ट्रीय स्तर पर उनका प्रभाव सीमित था, किंतु राज्य-स्तरीय राजनीति और श्रमिक आंदोलनों को आकार देने में महत्वपूर्ण था।

### 2.3.6 गठबंधन की राजनीति

कांग्रेस के वर्चस्व के पतन से 1980 के दशक में गठबंधन की राजनीति का उदय हुआ। 1989 के चुनाव एक ऐसे युग की शुरुआत थे जिसमें किसी एक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला, जिससे गठबंधन आवश्यक हो गए। वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय मोर्चे ने भाजपा और वामपंथी दलों के समर्थन से सरकार बनाई। 1990 के दशक में बार-बार गठबंधन सरकारें बनीं, जिनमें संयुक्त मोर्चा (1996–1998) और भाजपा-नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA, 1998–2004) शामिल थे। गठबंधन की राजनीति ने क्षेत्रीय दलों को सशक्त किया, जिन्होंने किंगमेकर की भूमिकाएँ निभाईं, किंतु इससे अस्थिरता भी आई, जैसा कि 1990 के दशक की अल्पजीवी सरकारों में देखा गया। उस युग ने विविध वैचारिक और क्षेत्रीय हितों के प्रबंधन की जटिलताओं को उजागर किया।

### 2.3.6 आपातकाल (1975–1977)

इंदिरा गाँधी द्वारा 25 जून 1975 को घोषित आपातकाल भारतीय राजनीति की एक निर्णायक

घटना थी। राष्ट्रीय सुरक्षा के खतरों और आर्थिक अस्थिरता का हवाला देते हुए सरकार ने नागरिक स्वतंत्रताएँ निलंबित कर दीं, प्रेस पर सेंसरशिप लगाई और विपक्षी नेताओं को गिरफ़्तार किया। आपातकाल राजनीतिक चुनौतियों की प्रतिक्रिया था, जिनमें इंदिरा गाँधी के निर्वाचन के विरुद्ध इलाहाबाद उच्च न्यायालय का निर्णय और जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुए जन-प्रदर्शन शामिल थे। इसने लोकतांत्रिक संस्थाओं की नाज़ुकता को उजागर किया और जबरन नसबंदी सहित व्यापक मानवाधिकार उल्लंघनों को जन्म दिया। 1977 के चुनावों ने, जिन्होंने आपातकाल का अंत किया, जनता पार्टी की जीत देखी, जो तानाशाही के प्रति जन-आक्रोश को दर्शाती थी। आपातकाल ने राजनीतिक विमर्श को नया आकार दिया, विपक्षी एकता को मज़बूत किया और लोकतंत्र तथा पंथनिरपेक्षता पर बहसों को जन्म दिया।

## 2.4 जन आंदोलन

### 2.4.1 दलित आंदोलन

इतिहास भारतीय समाज में जाति, वर्ग, लिंग आदि के आधार पर सामाजिक विभाजनों की उपस्थिति का साक्षी है। इन विभाजनों ने भारतीय समाज के संपूर्ण सामाजिक ताने-बाने को बदल दिया है, जिसमें शोषित वर्ग, चाहे वे दलित हों, आदिवासी हों या महिलाएँ, पारंपरिक ब्राह्मणवादी उत्पीड़न-ढाँचे द्वारा व्यवस्थित रूप से हाशिये पर धकेल दिए गए हैं। दलित वे लोग हैं जिनका सदियों से आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक शोषण होता रहा है। मनुष्यों के समाज में रहने में असमर्थ होकर वे गाँव के बाहर निम्न स्तर के व्यवसायों पर निर्भर रहकर रहते रहे और "अछूत" के रूप में जीवन बिताते रहे। यह शोषण हिंदू समाज की सदियों पुरानी जातिगत पदानुक्रमिक परंपरा द्वारा किए गए भेदभाव के कारण है। इस पदानुक्रम ने सदियों से समाज के हर क्षेत्र में दलितों के उत्पीड़न का कारण बनकर उन्हें गरीबी और अपमान के जीवन के अधीन कर दिया है। दलित (पूर्व-अछूत), जिनका तथाकथित उच्च जातियों द्वारा क्रूरतापूर्वक शोषण किया गया, वर्णाश्रम सिद्धांत के बाहर पड़े रहे और स्वतंत्रता-पूर्व भारत में उन्हें बहिष्कृत (outcaste) कहा जाता था। भारत को स्वतंत्रता मिली, किंतु दलितों को गरिमा और समानता के साथ जीवन जीने की अनुमति नहीं दी गई। यह समानता का विचार ही है जिसने उनके विरुद्ध किए गए सदियों पुराने अत्याचारों के विरोध में भारत में दलित आंदोलन का आरंभ किया। दलित आंदोलन एक ऐसा संघर्ष है जो उच्च जातियों के सामाजिक-सांस्कृतिक आधिपत्य का प्रतिकार करने का प्रयास करता है। यह जनसमूह का एक आंदोलन है जो भाषणों, साहित्यिक रचनाओं, नाटकों, गीतों, सांस्कृतिक संगठनों और अन्य सभी संभव उपायों के माध्यम से न्याय की लालसा रखता है। अतः इसे एक ऐसा आंदोलन कहा जा सकता है जिसका नेतृत्व दलितों ने हिंदू समाज की अन्य सभी जातियों के साथ समानता प्राप्त करने के लिए किया है। दलित आंदोलन का मुख्य उद्देश्य भारत में सामाजिक समानता पर आधारित समाज की स्थापना करना था।

दलित आंदोलन जाति-आधारित भेदभाव को चुनौती देने और सामाजिक समानता की माँग करने वाली एक सशक्त शक्ति के रूप में उभरे। बी.आर. अंबेडकर से प्रेरित होकर दलित सक्रियता ने 1970 के दशक में महाराष्ट्र में दलित पैंथर्स के गठन के साथ गति पकड़ी, जो ब्लैक पैंथर्स की तर्ज़ पर बना था। पैंथर्स ने साहित्य, विरोध-प्रदर्शनों और सांस्कृतिक अभिव्यक्ति के माध्यम से जातिगत उत्पीड़न और अस्पृश्यता का विरोध किया। 1978 में पिछड़ा और अल्पसंख्यक समुदाय

कर्मचारी महासंघ (BAMCEF) का गठन हुआ, जिसके बाद 1984 में कांशीराम के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी (BSP) बनी। BSP ने उत्तर भारत, विशेषकर उत्तर प्रदेश, में दलितों और अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) को संगठित किया और सामाजिक न्याय प्राप्त करने के साधन के रूप में राजनीतिक सत्ता की वकालत की। OBC आरक्षण के लिए मंडल आयोग की सिफ़ारिशों (1990) ने दलित और पिछड़ी जातियों की राजनीतिक मुखरता को और बढ़ाया।

### 2.4.2 आदिवासी आंदोलन

भारत के आदिवासी भारत की स्वतंत्रता के बाद से और उससे बहुत पहले से अपनी भूमि की रक्षा करने और आत्मनिर्णय के अपने सामूहिक अधिकार को स्थापित करने का प्रयास करते रहे हैं। पत्थलगड़ी आंदोलन आत्मनिर्णय की सबसे सशक्त हालिया जन-अभिव्यक्ति है, यही संभवतः कारण है कि इसके प्रतिभागियों को भारतीय राज्य द्वारा आतंकित और अपराधी ठहराया गया है। यही कारण है कि यह अत्यंत आवश्यक है कि अधिक से अधिक लोग इस आंदोलन को समझें।

'आदिवासी' शब्द दो हिंदी शब्दों – आदि और वासी – से मिलकर बना है – अतः शाब्दिक रूप से इसका अर्थ 'मूल निवासी' है, जो स्वदेशीपन का संकेत देता है।

आदिवासी (जनजातीय) आंदोलन भूमि अधिकारों, सांस्कृतिक संरक्षण, और औद्योगीकरण तथा विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापन के प्रतिरोध पर केंद्रित थे। 1950 और 1960 के दशकों में झारखंड, ओडिशा और छत्तीसगढ़ जैसे राज्यों में भूमि-अलगाव और शोषण के विरुद्ध जनजातीय विद्रोह हुए। झारखंड आंदोलन ने जनजातीय पहचान और संसाधनों की रक्षा के लिए पृथक राज्य की माँग की, जिसकी परिणति 2000 में झारखंड के गठन में हुई। आदिवासी सक्रियता वामपंथी आंदोलनों से भी जुड़ी, जैसा कि नक्सली आंदोलन में देखा गया, जिसने जनजातीय शोषण को संबोधित किया, किंतु प्रायः हिंसक हो गया। इन आंदोलनों ने आदिवासियों के हाशियाकरण और भारत की विकास-कथा में समावेश के लिए उनके संघर्ष को उजागर किया।

### 2.4.3 श्रमिक आंदोलन

भारत के श्रमिक आंदोलन के बीज औपनिवेशिक युग में बोए गए, जब ब्रिटिश औद्योगीकीकरण ने पारंपरिक आर्थिक संरचना को बदलना शुरू किया। 19वीं सदी के मध्य में रेलवे, सूती मिलों, जूट कारखानों और कोयला खदानों की स्थापना ने मज़दूरी-श्रम की अभूतपूर्व माँग पैदा की। इस अवधि ने एक महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन की शुरुआत को चिह्नित किया: भारत के औद्योगिक श्रमिक वर्ग का उदय।

1850 के दशक में बंबई (अब मुंबई) में पहली सूती मिलों और बंगाल में जूट मिलों की स्थापना हुई। 1879 तक भारत में 56 सूती मिलें थीं जिनमें लगभग 43,000 श्रमिक कार्यरत थे। बिहार के जमालपुर में 1862 में स्थापित रेलवे कार्यशाला औद्योगिक श्रम के सबसे बड़े नियोजकों में से एक बन गई। इन औद्योगिक केंद्रों ने बड़ी संख्या में ग्रामीण श्रमिकों को आकर्षित किया, जिससे नए शहरी औद्योगिक समुदाय बने।

### प्रारंभिक कार्य-परिस्थितियाँ और शोषण

प्रारंभिक औद्योगिक श्रमिक वर्ग को गंभीर शोषण का सामना करना पड़ा। श्रमिकों को सहना पड़ा–

- **अत्यधिक कार्य-घंटे :** 16 घंटे का कार्यदिवस आम था, साप्ताहिक अवकाश के बिना।
- **असुरक्षित परिस्थितियाँ :** कारखानों में बुनियादी सुरक्षा उपायों का अभाव था, जिसके परिणामस्वरूप बार-बार दुर्घटनाएँ होती थीं।
- **बाल श्रम :** छह वर्ष तक के बच्चे खतरनाक परिस्थितियों में काम करते थे।
- **अत्यल्प मज़दूरी :** भुगतान जीवन-निर्वाह के लिए भी मुश्किल से पर्याप्त था।
- **खराब आवास :** श्रमिक कारखानों के पास भीड़भाड़ वाली, अस्वच्छ बस्तियों में रहते थे।

इन परिस्थितियों ने श्रमिक असंतोष के लिए उपजाऊ भूमि तैयार की। किसी भी सुरक्षात्मक कानून के अभाव का अर्थ था कि नियोक्ताओं के पास अपने कार्यबल पर लगभग निरंकुश शक्ति थी। मनमानी बर्खास्तगी, वेतन-कटौती या असुरक्षित कार्य-परिस्थितियों के विरुद्ध श्रमिकों के पास बहुत कम उपाय थे।

श्रमिक आंदोलनों को वामपंथी दलों से संबद्ध ट्रेड यूनियनों (जैसे CPI की अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस और CPI(M) का सेंटर ऑफ इंडियन ट्रेड यूनियंस) तथा कांग्रेस की भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (INTUC) ने संचालित किया। 1970 के दशक में कपड़ा और रेलवे जैसे उद्योगों में हड़तालों सहित महत्वपूर्ण श्रमिक अशांति देखी गई। 1974 की रेलवे हड़ताल, जो भारत के इतिहास की सबसे बड़ी हड़तालों में से एक थी, ने बेहतर वेतन और कार्य-परिस्थितियों की माँग की, किंतु आपातकाल के दौरान उसे दबा दिया गया। 1980 के दशक में आर्थिक उदारीकरण के कारण श्रमिक आंदोलनों को चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसने श्रमिकों के अधिकारों की तुलना में औद्योगिक वृद्धि को प्राथमिकता दी, जिससे यूनियनों का प्रभाव घटा।

### 2.4.4 किसान आंदोलन

किसान आंदोलनों ने भूमि सुधार, काश्तकारी अधिकार और कृषि मूल्यों जैसे मुद्दों को संबोधित किया। 1950 और 1960 के दशकों में पश्चिम बंगाल और केरल जैसे राज्यों में वामपंथी सरकारों के नेतृत्व में सफल भूमि सुधार हुए। 1967 में नक्सलबाड़ी (पश्चिम बंगाल) से शुरू हुआ किसान आंदोलन सामंती ज़मींदारों के विरुद्ध एक उग्र किसान विद्रोह था, जिसने सशस्त्र संघर्ष की वकालत की। यद्यपि यह अन्य राज्यों में फैला, इसे राज्य के दमन का सामना करना पड़ा। 1980 के दशक में भारतीय किसान यूनियन जैसे संगठनों के नेतृत्व वाले किसान आंदोलनों का उदय हुआ, जिन्होंने बेहतर फ़सल मूल्यों और ऋण-राहत की माँग की, जो हरित क्रांति के असमान लाभों के बीच कृषि संकट को दर्शाता था।

## 2.5 महिला आंदोलन और संस्थागत परिवर्तन

### 2.5.1 महिला आंदोलन

भारत में महिला आंदोलन ने 1970 के दशक में नारीवादी संगठनों और तृणमूल सक्रियता के नेतृत्व में गति पकड़ी। गुजरात में स्व-रोज़गार महिला संघ (SEWA) और हैदराबाद में प्रोग्रेसिव ऑर्गनाइज़ेशन ऑफ वीमेन जैसे समूहों ने आर्थिक सशक्तीकरण, महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और पितृसत्तात्मक मानदंडों जैसे मुद्दों को उठाया। आंदोलन ने दहेज-संबंधी हिंसा, बलात्कार और कार्यस्थल पर भेदभाव को चुनौती दी, जिससे सार्वजनिक अभियान और कानूनी पैरवी हुई। सरकारी रिपोर्ट 'समानता की ओर' (Towards Equality, 1974) के प्रकाशन ने लैंगिक असमानताओं को उजागर किया और नारीवादी सक्रियता को प्रेरित किया। आंदोलन विविधतापूर्ण था, जिसमें शहरी मध्यवर्गीय नारीवादी और ग्रामीण महिलाओं के संघर्ष, दोनों शामिल थे, और इसने कानूनी सुधारों के लिए दबाव बनाने में प्रमुख भूमिका निभाई।

### 2.5.2 व्यक्तिगत कानूनों पर बहस

विवाह, तलाक और उत्तराधिकार को नियंत्रित करने वाले व्यक्तिगत कानून, धार्मिक परंपराओं में उनके आधार के कारण, एक विवादास्पद मुद्दा थे। हिंदू व्यक्तिगत कानूनों में 1950 के दशक में हिंदू विवाह अधिनियम (1955) और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम (1956) जैसे अधिनियमों के माध्यम से सुधार किया गया, जिन्होंने महिलाओं को विवाह और संपत्ति में अधिक अधिकार दिए। तथापि, मुस्लिम व्यक्तिगत कानून काफ़ी हद तक असुधारित रहे, जिससे लैंगिक समानता और पंथनिरपेक्षता पर बहस हुई। शाहबानो मामला (1985), जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को भरण-पोषण प्रदान किया, विवाद का कारण बना। कांग्रेस के तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी जी की सरकार ने संसद में अधिनियम पारित कर न्यायलय का निर्णय को बदला अंतत: सरकार द्वारा मुस्लिम महिला अधिनियम (तलाक पर अधिकारों का संरक्षण) अधिनियम, 1986 पारित किए जाने ने उस निर्णय को पलट दिया, जिसमें लैंगिक न्याय की तुलना में सामुदायिक भावनाओं को प्राथमिकता दी गई, और इससे समान नागरिक संहिता और पंथनिरपेक्षता पर बहसों को बल मिला।

### 2.5.3 महिलाओं के विरुद्ध अत्याचारों पर कानून

महिला आंदोलन के कारण महिलाओं के विरुद्ध हिंसा को संबोधित करने के लिए महत्वपूर्ण विधायी परिवर्तन हुए। आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1983 ने बलात्कार और यौन हमले के विरुद्ध कानूनों को सुदृढ़ किया, कठोर दंड लागू किए और हिरासत में बलात्कार को मान्यता दी। ''दहेज निषेध अधिनियम, 1961'' को दहेज-संबंधी हिंसा को संबोधित करने के लिए 1984 और 1986 में संशोधित किया गया, यद्यपि इसका प्रवर्तन कमज़ोर रहा। महिलाओं का ''अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986'' का उद्देश्य मीडिया में वस्तुकरण पर अंकुश लगाना था। इन कानूनों ने लैंगिक हिंसा को उजागर करने में महिला आंदोलन की सफलता को दर्शाया, किंतु सामाजिक दृष्टिकोणों और न्यायिक अकुशलताओं के कारण उनके क्रियान्वयन में चुनौतियाँ आईं।

## 2.6 अंतर्संबंध और प्रभाव

1950 से 1990 की अवधि में राजनीतिक और सामाजिक रुझानों के बीच जटिल पारस्परिक क्रिया देखी गई। कांग्रेस के वर्चस्व का पतन और क्षेत्रीय तथा पहचान-आधारित दलों का उदय हाशिये पर पड़े समूहों में बढ़ती सामाजिक मुखरता को दर्शाता था। दलितों, आदिवासियों, श्रमिकों और किसानों के आंदोलनों सहित जन आंदोलनों ने राज्य और सामाजिक संरचनाओं को चुनौती दी और राजनीतिक एजेंडा को प्रभावित किया। महिला आंदोलन पंथनिरपेक्षता और व्यक्तिगत कानूनों पर बहसों से जुड़ा, जिसने परंपरा और आधुनिकता के बीच तनावों को उजागर किया। आपातकाल ने लोकतांत्रिक संस्थाओं की नाज़ुकता को रेखांकित किया, जबकि गठबंधन की राजनीति ने भारत की विविधतापूर्ण राजनीतिक व्यवस्था को प्रतिबिंबित किया। इन रुझानों ने 1990 के दशक में भारत के अधिक बहुलतावादी और विवादित राजनीतिक परिदृश्य की ओर संक्रमण की नींव रखी।

## 2.7 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. 1950 से 1967 तक भारतीय राजनीति पर किस दल का वर्चस्व रहा?

   a) भारतीय जनसंघ

   b) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस

   c) भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी

   d) जनता पार्टी

2. 1951 में भारतीय जनसंघ की स्थापना किसने की?

   a) अटल बिहारी वाजपेयी

   b) श्यामा प्रसाद मुखर्जी

   c) लालकृष्ण आडवाणी

   d) नरेंद्र मोदी

3. भारतीय जनता पार्टी (BJP) से कौन-सी विचारधारा जुड़ी है?

   a) समाजवाद

   b) हिंदुत्व

   c) पंथनिरपेक्षता

   d) साम्यवाद

4. किस घटना ने भारत में एकदलीय वर्चस्व के अंत को चिह्नित किया?

   a) 1967 के आम चुनाव

b) 1977 के आम चुनाव

c) 1989 के आम चुनाव

d) 1996 के आम चुनाव

5. 1984 के लोकसभा चुनावों में कौन-सा क्षेत्रीय दल मुख्य विपक्ष के रूप में उभरा?

a) द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK)

b) तेलुगु देशम पार्टी (TDP)

c) अकाली दल

d) बहुजन समाज पार्टी (BSP)

6. 1977 से 2011 तक किस राज्य पर वाम मोर्चे का शासन रहा?

a) केरल

b) पश्चिम बंगाल

c) त्रिपुरा

d) तमिलनाडु

7. 1990 के दशक में गठबंधन की राजनीति की प्रमुख विशेषता क्या थी?

a) एकदलीय वर्चस्व

b) वैचारिक सुसंगति

c) क्षेत्रीय दलों का प्रभाव

d) स्थिर सरकारें

8. 1975 में आपातकाल क्यों घोषित किया गया?

a) आर्थिक संकट

b) राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा

c) राजनीतिक अस्थिरता

d) उपर्युक्त सभी

9. 1970 के दशक में किस आंदोलन को ब्लैक पैंथर्स से प्रेरणा मिली?

a) झारखंड आंदोलन

b) दलित पैंथर्स

c) नक्सली आंदोलन

d) महिला आंदोलन

10. बहुजन समाज पार्टी (BSP) की स्थापना किसने की?

a) बी.आर. अंबेडकर

b) कांशीराम

c) मायावती

d) वी.पी. सिंह

11. झारखंड आंदोलन की प्राथमिक माँग क्या थी?

a) भूमि सुधार

b) पृथक राज्य का दर्जा

c) श्रमिक अधिकार

d) महिला अधिकार

12. 1970 के दशक में कौन-सी हड़ताल एक प्रमुख श्रमिक आंदोलन थी?

a) कपड़ा हड़ताल

b) रेलवे हड़ताल (1974)

c) कोयला खनिकों की हड़ताल

d) किसानों की हड़ताल

13. नक्सली आंदोलन का प्राथमिक केंद्र-बिंदु क्या था?

a) शहरी श्रमिक अधिकार

b) ज़मींदारों के विरुद्ध किसान विद्रोह

c) महिला सशक्तीकरण

d) पर्यावरण संरक्षण

14. किस रिपोर्ट ने 1970 के दशक में महिला आंदोलन को प्रेरित किया?

a) मंडल आयोग की रिपोर्ट

b) 'समानता की ओर' रिपोर्ट (Towards Equality)

c) शाहबानो मामला

d) सच्चर समिति की रिपोर्ट

15. दहेज-संबंधी हिंसा को संबोधित करने के लिए 1980 के दशक में किस अधिनियम में संशोधन किया गया?

a) हिंदू विवाह अधिनियम

b) दहेज निषेध अधिनियम

c) मुस्लिम महिला अधिनियम

d) आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम

16. शाहबानो मामले (1985) का परिणाम क्या था?

a) समान नागरिक संहिता लागू हुई

b) एक तलाकशुदा मुस्लिम महिला को भरण-पोषण प्रदान किया गया

c) तीन तलाक पर प्रतिबंध

d) कोई कानूनी परिवर्तन नहीं

17. 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का नेतृत्व किस दल ने किया?

a) जनता दल

b) भाजपा

c) कांग्रेस

d) CPI(M)

18. आपातकाल (1975–1977) का एक प्रमुख परिणाम क्या था?

a) कांग्रेस के वर्चस्व का उदय

b) विपक्षी एकता का सुदृढ़ीकरण

c) आर्थिक उदारीकरण

d) क्षेत्रीय दलों का पतन

19. 1978 में दलितों और OBC को संगठित करने के लिए कौन-सा संगठन बनाया गया?

a) दलित पैंथर्स

b) BAMCEF

c) BSP

d) SEWA

20. किस अधिनियम का उद्देश्य मीडिया में महिलाओं के वस्तुकरण पर अंकुश लगाना था?

a) महिलाओं का अशिष्ट रूपण (प्रतिषेध) अधिनियम, 1986

b) आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 1983

c) दहेज निषेध अधिनियम, 1961

d) हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956

## 2.8 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर

1. b
2. b
3. b
4. b
5. b
6. b
7. c
8. d
9. b
10. b
11. b
12. b
13. b
14. b
15. b
16. b
17. a
18. b
19. b
20. a

## 2.9 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री


- Guha, Ramachandra. *India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy.* HarperCollins, 2007.
- Kothari, Rajni. *Politics in India*. Orient BlackSwan, 1970.

- Jaffrelot, Christophe. *The Hindu Nationalist Movement in India*. Columbia University Press, 1996.
- Hasan, Zoya. *Politics and the State in India*. Sage Publications, 2000.
- Omvedt, Gail. *Reinventing Revolution: New Social Movements and the Socialist Tradition in India*. M.E. Sharpe, 1993.
- Kumar, Radha. *The History of Doing: An Illustrated Account of Movements for Women's Rights and Feminism in India, 1800–1990*. Kali for Women, 1993.


## लेख और रिपोर्टें


- *Towards Equality: Report of the Committee on the Status of Women in India. Government of India, 1974.*
- Chandra, Bipan. "The Indian Left: From Communism to Coalition Politics." Economic and Political Weekly, vol. 25, no. 7/8, 1990.
- Brass, Paul R. "The Politics of India Since Independence." The New Cambridge History of India, Cambridge University Press, 1994.
- Menon, Nivedita. "Gender and Politics in India." Economic and Political Weekly, vol. 34, no. 44, 1999.


## वेब संसाधन


- National Council of Educational Research and Training (NCERT). Politics in India Since Independence.: ncert.nic.in.
- Carnegie Endowment for International Peace. The BJP in Power: Indian Democracy and Religious Nationalism.: carnegieendowment.org.
- IGNOU e-Gyankosh. भारतीय राजनीति और समाज पर अध्ययन सामग्री।

## इकाई – 3

# 1980 और 1990 के दशकों के निर्णायक मोड़

## संरचना


3.1 उद्देश्य

3.2 परिचय

3.3 राजनीतिक घटनाक्रम

- 3.3.1 कांग्रेस के वर्चस्व का पतन
- 3.3.2 गठबंधन की राजनीति का उदय
- 3.3.3 मंडल आयोग और OBC राजनीति
- 3.3.4 हिंदुत्व और सांप्रदायिक राजनीति का उदय

3.4 आर्थिक रूपांतरण

- 3.4.1 उदारीकरण की पूर्वपीठिका (1980 का दशक)
- 3.4.2 1991 का आर्थिक संकट और सुधार
- 3.4.3 उदारीकरण का प्रभाव

3.5 सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन

- 3.5.1 जाति-आधारित आंदोलन
- 3.5.2 महिला आंदोलन और लैंगिक मुद्दे
- 3.5.3 सांप्रदायिक तनाव और पंथनिरपेक्षता
- 3.5.4 सांस्कृतिक बदलाव और वैश्वीकरण

3.6 विदेश नीति में बदलाव

- 3.6.1 शीत युद्ध का अंत और उसका प्रभाव
- 3.6.2 1990 के दशक में भारत की विदेश नीति
- 3.6.3 परमाणु परीक्षण और वैश्विक स्थिति

3.7 निष्कर्ष

3.8 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

3.9 बहुविकल्पीय प्रश्नों (MCQs) के उत्तर

3.10 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री

## 3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य होंगे कि–

- भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वर्चस्व के पतन और गठबंधन की राजनीति के उदय का विश्लेषण कर सकें।
- 1991 के आर्थिक सुधारों के कारणों, क्रियान्वयन और परिणामों का मूल्यांकन कर सकें।
- जाति-आधारित लामबंदी, लैंगिक मुद्दों और सांप्रदायिक तनावों सहित सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरणों की जाँच कर सकें।
- वैश्विक भू-राजनीतिक परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में भारत की विदेश नीति के अनुकूलनों का आकलन कर सकें।
- समकालीन भारत को आकार देने वाले प्रमुख निर्णायक मोड़ों पर आलोचनात्मक चिंतन कर सकें।

## 3.2 परिचय

1980 का दशक आपातकाल (1975–1977) के बाद की स्थिति से गुज़रते और लोकतांत्रिक शासन की वापसी के साथ आरंभ हुआ। राजनीतिक परिदृश्य इंदिरा गाँधी और बाद में राजीव गाँधी के नेतृत्व में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वर्चस्व से चिह्नित था, फिर भी यह क्षेत्रीय और विपक्षी आंदोलनों के बढ़ने का भी काल था। गठबंधन की राजनीति के उदय, नए राजनीतिक दलों के उभार और क्षेत्रीय पहचानों की बढ़ती मुखरता ने केंद्रीकृत राजनीतिक संरचना को चुनौती दी। 1984 में प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी की हत्या और उसके बाद हुए सिख-विरोधी दंगों जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं ने गहरे सांप्रदायिक तनावों को उजागर किया और राष्ट्रीय एकता तथा पंथनिरपेक्षता पर प्रश्न खड़े किए। 1990 के दशक में भारतीय जनता पार्टी (BJP) और अन्य क्षेत्रीय दल के उदय के साथ एकदलीय प्रणाली पतन और आगे बढ़ा, जिसने अधिक खंडित किंतु बहुलतावादी राजनीतिक व्यवस्था की ओर बदलाव का संकेत दिया।

आर्थिक दृष्टि से, 1980 का दशक 1991 के उदारीकरण सुधारों की क्लिष्ट शब्दावली था, जो भारत के लिए एक निर्णायक क्षण बन गया। देश को भुगतान-संतुलन संकट सहित गंभीर आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिसके कारण प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव और वित्त मंत्री मनमोहन सिंह के नेतृत्व में साहसिक सुधार आवश्यक हो गए। राज्य-नियंत्रित, संरक्षणवादी अर्थव्यवस्था से उदारीकृत, बाज़ार-उन्मुख ढाँचे की ओर बदलाव ने भारत को वैश्विक व्यापार और निवेश के लिए खोल दिया। इस अवधि में मध्यम वर्ग का उदय, निजी क्षेत्र की वृद्धि और भारत के सूचना प्रौद्योगिकी उछाल के बीज देखे गए, जिन्होंने उसकी आर्थिक पहचान को मौलिक रूप से बदल दिया।

सामाजिक दृष्टि से, 1980 और 1990 के दशक तनावों और रूपांतरणों से चिह्नित थे। 1990 में अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के लिए आरक्षण की वकालत करने वाली मंडल आयोग की सिफ़ारिशों ने जाति, समता और सामाजिक न्याय पर राष्ट्रव्यापी बहसों को जन्म दिया। साथ ही, राम जन्मभूमि

आंदोलन ने गति पकड़ी, जिसने सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को हवा दी और भारत के पंथनिरपेक्ष ताने-बाने को नया आकार दिया। इस अवधि में शिक्षा, शहरीकरण और महिला सशक्तीकरण में प्रगति भी हुई, साथ ही गरीबी और असमानता जैसी चुनौतियाँ भी रहीं।

सांस्कृतिक दृष्टि से, टेलीविज़न के आगमन, बॉलीवुड के प्रसार और वैश्विक मीडिया के प्रभाव ने परंपरा को आधुनिकता से मिलाते हुए एक सांस्कृतिक पुनर्जागरण को जन्म दिया। इस प्रकार 1980 और 1990 के दशक परिवर्तन की एक भट्ठी का प्रतिनिधित्व करते हैं, जहाँ भारत ने अपनी ऐतिहासिक जड़ों और वैश्विक एकीकरण की आकांक्षाओं के बीच संतुलन साधा। यह इकाई इन निर्णायक मोड़ों की जाँच करती है और विद्यार्थियों को समकालीन भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य पर उनके प्रभाव तथा राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य को आकार देने में उनकी स्थायी विरासत का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

## 3.3 राजनीतिक घटनाक्रम

यह खंड भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक आधिपत्य के क्षरण, गठबंधन सरकारों के उदय, मंडल आयोग के परिवर्तनकारी प्रभाव, और हिंदुत्व-प्रेरित सांप्रदायिक राजनीति के उदय की जाँच करता है, जिन्होंने सामूहिक रूप से भारत के राजनीतिक परिदृश्य को नया आकार दिया।

### 3.3.1 कांग्रेस के वर्चस्व का पतन

यह उप-शीर्षक उन कारकों की पड़ताल करता है जिनके कारण कांग्रेस पार्टी कमज़ोर हुई, जिसने स्वतंत्रता के बाद से भारतीय राजनीति पर वर्चस्व बनाए रखा था। इसमें 1980 में इंदिरा गाँधी की वापसी, 1984 में उनकी हत्या, राजीव गाँधी का आधुनिकीकरणकारी किंतु विवादों से भरा कार्यकाल, और 1989 में पार्टी की चुनावी हार शामिल है, जो उसकी निर्विवाद सर्वोच्चता के अंत का सूचक थी।

- **आंतरिक असंतोष और गुटबाज़ी :** कांग्रेस के पतन के प्रमुख कारणों में से एक पार्टी के भीतर आंतरिक असंतोष और गुटबाज़ी थी। जैसे-जैसे पार्टी का आकार और प्रभाव बढ़ा, अपनी विविध सदस्यता के बीच एकता बनाए रखना उत्तरोत्तर कठिन होता गया। गुटीय संघर्षों और सत्ता-संघर्षों ने पार्टी की संगठनात्मक संरचना को कमज़ोर किया और उसके समर्थन-आधार को क्षीण किया।
- **आर्थिक चुनौतियाँ :** 1960 के दशक के अंत तक भारत को खाद्य संकट, मुद्रास्फिती और बेरोज़गारी सहित अनेक आर्थिक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा था। इन मुद्दों को प्रभावी ढंग से हल करने में कांग्रेस सरकार की असफल रही परिणामत: जनता में अंत सरकार के प्रति असंतोष बढ़ा। इस असंतोष ने विपक्षी दलों को समर्थन जुटाने और कांग्रेस के वर्चस्व को चुनौती देने का अवसर दिया।
- **क्षेत्रीय दलों का उदय :** 1967 के चुनावों में कई क्षेत्रीय दलों का उभार हुआ, जिन्होंने विभिन्न राज्यों में कांग्रेस को सफलतापूर्वक चुनौती दी। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (DMK) और पंजाब में अकाली दल जैसे इन दलों ने क्षेत्रीय भावनाओं का लाभ उठाया और ऐसे वैकल्पिक राजनीतिक मंच प्रस्तुत किए जो स्थानीय जनता को प्रभावित

करते थे। इन क्षेत्रीय दलों के उदय ने भारत में अधिक विविध और प्रतिस्पर्धी राजनीतिक परिदृश्य की शुरुआत को चिह्नित किया।

- **1967 के चुनावों का प्रभाव :** 1967 के चुनाव भारतीय राजनीति में एक निर्णायक क्षण थे, क्योंकि उन्होंने कांग्रेस के वर्चस्व में पहली उल्लेखनीय गिरावट को चिह्नित किया। तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल और पंजाब सहित कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी सरकारों का गठन हुआ। शक्ति-समीकरणों में इस बदलाव ने कांग्रेस की निर्विवाद सर्वोच्चता के अंत का संकेत दिया और भारत में अधिक बहुलतावादी तथा प्रतिस्पर्धी दल प्रणाली का मार्ग प्रशस्त किया।
- **इंदिरा गाँधी की वापसी (1980) :** जनता पार्टी के विघटन के बाद इंदिरा गाँधी ने सत्ता पुनः प्राप्त की, किंतु उनके केंद्रीकृत नेतृत्व को क्षेत्रीय उग्रवादों (जैसे पंजाब का खालिस्तान आंदोलन, असम का विदेशी-विरोधी आंदोलन) और आर्थिक ठहराव से चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिससे जन-विश्वास क्षीण हुआ।
- **हत्या और उसके बाद की स्थिति (1984) :** ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद इंदिरा की उनके सिख अंगरक्षकों द्वारा हत्या ने सिख-विरोधी दंगे भड़काए, जिससे कांग्रेस की पंथनिरपेक्ष छवि को क्षति पहुँची। 1984 में राजीव गाँधी की भारी जीत सहानुभूति की लहर से प्रेरित थी, किंतु इसने नई चुनौतियों की शुरुआत भी चिह्नित की।
- **राजीव गाँधी का कार्यकाल (1984–1989) :** राजीव का प्रौद्योगिकी और आधुनिकीकरण (जैसे दूरसंचार क्रांति) पर ध्यान बोफ़ोर्स भ्रष्टाचार घोटाले और विदेश नीति की भूलों, जैसे श्रीलंका के गृहयुद्ध में भारत की भागीदारी (IPKF की तैनाती), से धुँधला पड़ गया।
- **1989 के चुनाव :** वी.पी. सिंह के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय मोर्चे के हाथों कांग्रेस की हार राष्ट्रीय राजनीति के विखंडन का संकेत थी, जिसमें क्षेत्रीय और वैचारिक दलों को प्रमुखता मिली।

### 3.3.2 गठबंधन की राजनीति का उदय

80 से 90 के दशक में एकदलीय वर्चस्व से गठबंधन सरकारों की ओर बदलाव का विश्लेषण करता है, जो भारत के विविध राजनीतिक स्पेक्ट्रम और स्थिर शासन बनाए रखने की चुनौतियों को दर्शाता है।

- **क्षेत्रीय आकांक्षाएँ :** भारत विविध संस्कृतियों, भाषाओं और क्षेत्रीय पहचानों वाला देश है। क्षेत्रीय दलों ने अपने राज्यों के विशिष्ट हितों और आकांक्षाओं का प्रतिनिधित्व करना शुरू किया और पर्याप्त समर्थन प्राप्त किया।
- **खंडित मतदाता वर्ग :** समय के साथ भारतीय मतदाता वर्ग अधिक खंडित होता गया, जिससे किसी एक दल के लिए स्पष्ट बहुमत प्राप्त करना कठिन हो गया। इस विखंडन ने गठबंधनों और मोर्चों को आवश्यक बना दिया।
- **कांग्रेस पार्टी का पतन :** भारतीय राजनीति पर कांग्रेस पार्टी की पकड़ के कमज़ोर होने से एक शून्य पैदा हुआ, जिसे क्षेत्रीय और छोटे राष्ट्रीय दलों ने भरने का प्रयास किया।

- **राष्ट्रीय मोर्चा सरकार (1989–1991):** भाजपा और वामपंथियों के समर्थन वाले वी.पी. सिंह के गठबंधन ने महत्वपूर्ण नीतियाँ लागू कीं, किंतु आंतरिक दरारों और विवादास्पद मंडल निर्णय के कारण वह ढह गया।
- **चंद्रशेखर का संक्षिप्त कार्यकाल (1990–1991) :** कांग्रेस द्वारा समर्थित एक टूटे हुए दल की सरकार, इस अल्पजीवी प्रशासन ने आरंभिक गठबंधन प्रयोगों की अस्थिरता को रेखांकित किया।
- **1990 के दशक की गठबंधन सरकारें :** इस दशक में एच.डी. देवेगौड़ा और आई.के. गुजराल के नेतृत्व में नाज़ुक सरकारें, साथ ही 1996 में भाजपा का संक्षिप्त कार्यकाल देखा गया, जिसने गठबंधन गतिशीलता की जटिलताओं को उजागर किया।
- **संयुक्त मोर्चा (1996-1998):** 1996 में गठित संयुक्त मोर्चा गठबंधन भारत में सफल गठबंधन राजनीति के आरंभिक उदाहरणों में से एक था। अनेक क्षेत्रीय और वाम-झुकाव वाले दलों से बने संयुक्त मोर्चे ने तब सत्ता प्राप्त की जब कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी (BJP) बहुमत हासिल करने में विफल रहीं। इस गठबंधन ने क्षेत्रीय दलों के बढ़ते महत्व और राष्ट्रीय राजनीति को प्रभावित करने की उनकी क्षमता को उजागर किया।
- **राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA) :** 1998 में भाजपा ने समान विचारधारा वाले दलों के गठबंधन, राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (NDA), के गठन का नेतृत्व किया। NDA की सफलता ने भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण बदलाव चिह्नित किया, क्योंकि इसने दर्शाया कि गठबंधन स्थिर शासन दे सकता है। अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में NDA ने 2004 तक भारत पर शासन किया, जिसमें आर्थिक सुधारों और अवसंरचना विकास पर ध्यान दिया गया।
- **संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) :** कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाला संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (UPA) 2004 में आम चुनावों में NDA को हराने के बाद उभरा। अनेक क्षेत्रीय और वाम-झुकाव वाले दलों से बने UPA ने एक दशक तक भारत पर शासन किया, जिसमें सामाजिक कल्याण योजनाओं और समावेशी विकास पर ध्यान दिया गया। UPA की सफलता ने भारत में गठबंधन राजनीति की भूमिका को और सुदृढ़ किया।

### 3.3.3 मंडल आयोग और OBC राजनीति

''मंडल आयोग'' की सिफ़ारिशों से अन्य पिछड़े वर्गों (OBC) को सशक्त करके जाति-आधारित राजनीति को पुनर्परिभाषित किया और सामाजिक न्याय पर बहसों को जन्म दिया। मंडल आयोग ने अपने पूर्ववर्ती की तुलना में अधिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया। उसने पिछड़े वर्गों की पहचान के लिए ग्यारह मानदंडों का उपयोग किया, जिनमें शामिल थे:

- **सामाजिक मानदंड:** वे जातियाँ जिन्हें उच्च जातियाँ अछूत मानती थीं, जिन्हें मंदिर-प्रवेश से वंचित रखा गया, और वे समुदाय जिनसे उच्च जातियाँ पानी स्वीकार नहीं करती थीं।
- **शैक्षिक मानदंड:** वे जातियाँ जिनकी साक्षरता दर राष्ट्रीय औसत से कम थी और उच्च शिक्षा में जिनका प्रतिनिधित्व कम था।

- **आर्थिक मानदंड:** वे समुदाय जो मुख्यतः शारीरिक श्रम में लगे थे और जिनके पास सीमित भूमि-स्वामित्व था।
- **पृष्ठभूमि:** 1979 में बी.पी. मंडल के नेतृत्व में गठित आयोग ने OBC की पहचान की और ऐतिहासिक असमानताओं को दूर करने के लिए सरकारी नौकरियों और शिक्षा में 27% आरक्षण की सिफ़ारिश की।
- **क्रियान्वयन (1990):** सिफ़ारिशों को लागू करने के वी.पी. सिंह के निर्णय से उच्च-जाति समूहों के व्यापक विरोध-प्रदर्शन और आत्मदाह की घटनाएँ हुईं, किंतु इसने OBC समुदायों को संगठित किया और क्षेत्रीय दलों को मज़बूत किया।
- **प्रभाव:** मुलायम सिंह यादव और लालू प्रसाद यादव जैसे OBC नेताओं के उदय ने चुनावी राजनीति को रूपांतरित किया, जिसमें समाजवादी पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल जैसे दलों को प्रमुखता मिली।

### 3.3.4 हिंदुत्व और सांप्रदायिक राजनीति का उदय

20वीं सदी का आरंभ भारत में तीव्र राजनीतिक जागृति का काल था। स्वतंत्रता संग्राम गति पकड़ रहा था, किंतु उसमें बढ़ते सांप्रदायिक तनाव भी चिह्नित थे। 1905 में बंगाल का विभाजन, 1906 में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का गठन और पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की शुरुआत ने ऐसा वातावरण बना दिया था जिसमें राजनीतिक गणनाओं में धार्मिक पहचान उत्तरोत्तर एक कारक बनती जा रही थी।

इसी आवेशित वातावरण में विनायक दामोदर सावरकर ने 1923 में प्रकाशित अपनी मौलिक कृति "हिंदुत्व: हिंदू कौन है?" (Hindutva: Who is a Hindu?) में हिंदुत्व की अपनी दृष्टि को स्पष्ट किया। सावरकर की अवधारणा धर्म से आगे जाकर एक सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान को समेटती थी। उनके अनुसार हिंदू वह था जिसके लिए भारत उसकी पितृभूमि और पुण्यभूमि दोनों हो। इस परिभाषा के गहरे निहितार्थ थे, क्योंकि इससे यह संकेत मिलता था कि मुसलमान और ईसाई, जिनकी पुण्यभूमि भारत के बाहर थी, पूर्ण रूप से भारतीय नहीं माने जा सकते। यह उप-शीर्षक भाजपा और उसके सहयोगी संगठनों द्वारा संचालित हिंदू राष्ट्रवाद की वृद्धि और भारत के पंथनिरपेक्ष ढाँचे पर उसके प्रभाव, विशेषकर राम जन्मभूमि आंदोलन के माध्यम से, का भी अनुरेखण करता है।

- **राम जन्मभूमि आंदोलन:** अयोध्या में राम मंदिर के लिए विश्व हिंदू परिषद के अभियान ने, जिसे एल.के. आडवाणी की 1990 की रथ यात्रा से बल मिला, मतदाताओं का ध्रुवीकरण किया और भाजपा के चुनावी आधार को बढ़ाया।
- **बाबरी मस्जिद का विध्वंस (1992):** कारसेवकों द्वारा किए गए विध्वंस ने देशव्यापी दंगे भड़काए, विशेषकर मुंबई में, जिसने भारत के पंथनिरपेक्ष लोकाचार को चुनौती दी और भाजपा के राजनीतिक उत्थान को मज़बूत किया।
- **भाजपा की वृद्धि:** 1984 में लोकसभा की 2 सीटों से 1996 में 161 सीटों तक, भाजपा का उदय हिंदुत्व विचारधारा की बढ़ती अपील को दर्शाता था।

## 3.4 आर्थिक रूपांतरण

यह खंड नियंत्रित अर्थव्यवस्था से बाज़ार-संचालित अर्थव्यवस्था की ओर क्रमिक बदलाव को, जिसकी परिणति 1991 के ऐतिहासिक सुधारों में हुई, समेटता है और भारत की विकास-पथ पर उनके दीर्घकालिक प्रभाव का मूल्यांकन करता है।

### 3.4.1 उदारीकरण की पूर्वपीठिका (1980 का दशक)

यह उप-शीर्षक 1980 के दशक की आर्थिक चुनौतियों और इंदिरा तथा राजीव गाँधी के अधीन आरंभिक सुधारों की जाँच करता है, जिन्होंने बाद के उदारीकरण की नींव रखी।

- **आर्थिक चुनौतियाँ :** उच्च शुल्क (टैरिफ), सार्वजनिक क्षेत्र का वर्चस्व और प्रतिबंधात्मक "लाइसेंस राज" ने, 5.7% की औसत GDP वृद्धि के बावजूद, विकास को अवरुद्ध किया।
- **राजीव गाँधी के सुधार :** आंशिक लाइसेंस-मुक्ति, निर्यात संवर्धन और प्रौद्योगिकी निवेश (जैसे दूरसंचार के लिए C-DOT) ने आरंभिक उदारीकरण प्रयासों को चिह्नित किया, यद्यपि संरचनात्मक अकुशलताएँ बनी रहीं।
- **बाह्य झटके :** सोवियत गुट के पतन और इराक-कुवैत युद्ध ने व्यापार और तेल आपूर्ति को बाधित किया, जिससे राजकोषीय घाटे बढ़ गए।

### 3.4.2 1991 का आर्थिक संकट और सुधार

यह उप-शीर्षक भुगतान-संतुलन संकट और उसके बाद पी.वी.

नरसिम्हा राव और मनमोहन सिंह के अधीन हुए सुधारों का विवरण देता है, जिन्होंने भारत के समाजवादी आर्थिक ढाँचे को ध्वस्त कर दिया।

- **संकट की पृष्ठभूमि :** विदेशी मुद्रा भंडार के 1 अरब डॉलर रह जाने पर, राजकोषीय घाटों, बाह्य झटकों और अस्थायी (असंधारणीय) खर्च के कारण भारत को गंभीर भुगतान-संतुलन (BoP) संकट का सामना करना पड़ा।
- **सुधार:** राव-सिंह की जोड़ी ने IMF ऋण के समर्थन से रुपये का अवमूल्यन, व्यापार उदारीकरण, औद्योगिक विनियमन-मुक्ति, FDI को प्रोत्साहन और राजकोषीय अनुशासन लागू किया।
- **प्रमुख उपाय :** लाइसेंस राज का उन्मूलन, शुल्कों में कटौती, और दूरसंचार तथा बैंकिंग जैसे क्षेत्रों को निजी खिलाड़ियों के लिए खोलना एक प्रतिमान-परिवर्तन था।

### 3.4.3 उदारीकरण का प्रभाव

भारत में उदारीकरण 1980 के दशक में औद्योगिक लाइसेंस-मुक्ति और सीमित विदेशी निवेश सहित आरंभिक कदमों के साथ शुरू हुआ, जिसने आर्थिक वृद्धि को गति दी, किंतु बढ़ते राजकोषीय घाटे और 1991 के भुगतान-संतुलन संकट में भी योगदान दिया। 1990 के दशक में व्यापक सुधार हुए, जिन्हें LPG (उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण) सुधार कहा जाता है, जिन्होंने औद्योगिक लाइसेंस समाप्त किए, क्षेत्रों को निजी क्षेत्र और विदेशी निवेश के लिए खोला

और व्यापार-बाधाएँ घटाईं, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक वृद्धि, विदेशी निवेश और उपभोक्ता विकल्प बढ़े। इन उपायों ने भारत को मौलिक रूप से अधिक बाज़ार-उन्मुख अर्थव्यवस्था में बदल दिया, जिससे महत्वपूर्ण लाभ हुए, साथ ही बढ़ती आय-असमानता और घरेलू उद्योगों के लिए प्रतिस्पर्धा जैसी नई चुनौतियाँ भी आईं। यह उप-शीर्षक 1991 के सुधारों के परिणामों का आकलन करता है, जिनमें आर्थिक वृद्धि, वैश्विक एकीकरण और बनी रहने वाली चुनौतियाँ शामिल हैं

- **आर्थिक वृद्धि :** 1990 के दशक में GDP वृद्धि औसतन 5.8% रही, जिसे निजी क्षेत्र ने, विशेषकर IT और दवा उद्योग में, गति दी।
- **वैश्विक एकीकरण :** बढ़े हुए FDI और व्यापार ने उद्योगों को गति दी, किंतु वैश्विक बाज़ारों पर भारत की निर्भरता को भी उजागर किया।
- **चुनौतियाँ :** रोज़गारविहीन वृद्धि, प्रभावी अनौपचारिक क्षेत्र और कृषि में ठहराव ने असमान विकास को रेखांकित किया, जिसमें बढ़ती असमानताएँ और ग्रामीण उपेक्षा थी।

## 3.5 सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन

1980 और 1990 के दशक आधुनिक इतिहास में एक निर्णायक चरण का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो विश्वभर में गहन सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरणों से चिह्नित था। इन दशकों में शीत युद्ध का अंत, वैश्वीकरण का उदय, जनसंचार माध्यमों का तेज़ प्रसार और डिजिटल क्रांति की शुरुआत देखी गई। लैंगिक समानता, नागरिक अधिकारों, पर्यावरण संरक्षण और सांस्कृतिक विविधता की वकालत करने वाले सामाजिक आंदोलनों ने गति पकड़ी और पारंपरिक मानदंडों तथा संस्थाओं को नया आकार दिया। अनेक देशों में 1980 के दशक में आर्थिक पुनर्संरचना, राजनीतिक उथल-पुथल और बदलती पहचानों की चुनौतियाँ आईं, जबकि 1990 के दशक ने उदारीकरण, वैश्विक संपर्क और बहुसंस्कृतिवाद के एक नए युग का आरंभ किया।

**यह खंड जाति लामबंदी, लैंगिक**

सक्रियता, सांप्रदायिक तनावों और वैश्वीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव से प्रेरित सामाजिक और सांस्कृतिक रूपांतरणों की पड़ताल करता है।

### 3.5.1 जाति-आधारित आंदोलन

यह उप-शीर्षक राजनीतिक और सामाजिक लामबंदी के माध्यम से हाशिये पर पड़े जाति समूहों के सशक्तीकरण का विश्लेषण करता है, जिसने भारत के सामाजिक पदानुक्रम को नया आकार दिया।

- मंडल आयोग का प्रभाव: मंडल आयोग, जिसे आधिकारिक रूप से द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग (1979) कहा जाता है, भारत के सामाजिक और राजनीतिक इतिहास में एक निर्णायक क्षण था। बी.पी. मंडल की अध्यक्षता में नियुक्त इसका प्राथमिक उद्देश्य सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों (SEBCs) की पहचान करना और उनकी उन्नति के उपाय सुझाना था। 1980 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें सरकारी नौकरियों और शैक्षणिक संस्थानों में अन्य पिछड़े अनुसूचित जनजातियों (STs)

[मूल पाठ में यहाँ शब्द गड़बड़ हैं] के लिए 27% आरक्षण का सुझाव दिया गया। समाज ने स्वतंत्रता के बाद के अपने सबसे नाटकीय मोड़ों में से एक का अनुभव किया। [मूल पाठ के अगले वाक्य अधूरे हैं:] इस कदम से राजनीतिक ध्रुवीकरण और सामाजिक अशांति पैदा हुई। [...] दलों और नेताओं ने चुनावी गतिशीलता को बदल दिया।

- **दलित मुखरता :** कांशीराम और मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी की वृद्धि ने उच्च-जाति के वर्चस्व को चुनौती दी और दलित आवाज़ों को बुलंद किया।
- **सबऑल्टर्न अध्ययन (Subaltern Studies) :** इस शैक्षणिक आंदोलन ने हाशिये पर पड़े समूहों के इतिहासों को उजागर किया और सामाजिक न्याय संबंधी विमर्शों को प्रभावित किया।

### 3.5.2 महिला आंदोलन और लैंगिक मुद्दे

1980 और 1990 के दशक भारत के साथ-साथ विश्वभर में महिला आंदोलनों और लैंगिक बहसों के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन वर्षों में एक बदलाव देखा गया [मूल पाठ में वाक्य यहाँ अधूरा है] कानून, कानूनी सुधारों की माँग करना, और राजनीति तथा रोज़गार में अधिक प्रतिनिधित्व के लिए दबाव बनाना।

वैश्विक स्तर पर, 1980 और 1990 के दशक संयुक्त राष्ट्र महिला दशक (1975–1985) और उसके बाद के अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों, विशेषकर 1995 के बीजिंग सम्मेलन, से भी आकार पाए, जिसने लैंगिक समानता, प्रजनन अधिकारों और विकास में महिलाओं की भागीदारी पर बल दिया। भारत में ये अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रम स्थानीय शासन में महिलाओं के लिए आरक्षण, महिलाओं के श्रम अधिकारों, और महिलाओं के जीवन पर आर्थिक उदारीकरण के प्रभाव जैसे मुद्दों पर बहसों के साथ मेल खाए।

इस प्रकार 1980 और 1990 के दशकों के महिला आंदोलनों ने न केवल लैंगिक मुद्दों के दायरे को कानूनी सुधारों से संरचनात्मक असमानताओं तक बढ़ाया, बल्कि भारत में नारीवाद के एजेंडे को भी पुनर्परिभाषित किया। इस अवधि को ठीक ही एक निर्णायक मोड़ के रूप में देखा जा सकता है जब महिलाओं की आवाज़ें सार्वजनिक जीवन में अधिक मुखरता से उभरीं, जिसने नीति और सामाजिक चेतना, दोनों को प्रभावित किया। यह उप-शीर्षक महिला आंदोलन के कानूनी सुधारों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर केंद्रित होने, तथा लैंगिक विमर्श में सांस्कृतिक योगदानों की जाँच करता है।

- **प्रमुख मुद्दे :** दहेज हत्याओं और घरेलू हिंसा के विरुद्ध अभियानों से दहेज निषेध (संशोधन) अधिनियम, 1984 जैसे कानून बने।
- **नारीवादी साहित्य :** कमला दास और अरुंधति रॉय की रचनाओं ने लिंग और पहचान की पड़ताल की और सांस्कृतिक आख्यानों को आकार दिया।
- **राजनीतिक प्रतिनिधित्व :** 73वें और 74वें संशोधनों (1992) ने स्थानीय शासन में महिलाओं के लिए 33% सीटें आरक्षित कीं, जिससे उनकी राजनीतिक एजेंसी (कर्तृत्व) बढ़ी।

- **दलित नारीवाद और मुख्यधारा के आख्यानों को चुनौती :** दलित महिलाओं ने स्वतंत्र रूप से संगठित होना शुरू किया और यह तर्क दिया कि जाति और लिंग के अंतर्संबंध के कारण उनके उत्पीड़न के अनुभव अलग हैं। 1995 में स्थापित नेशनल फेडरेशन ऑफ दलित वीमेन (NFDW) जैसे संगठनों ने जाति-आधारित हिंसा, भूमि अधिकारों और हाथ से मैला ढोने में दलित महिलाओं के शोषण जैसे मुद्दों को उजागर किया।

मंडल आयोग और उसके बाद की घटनाओं ने लैंगिक राजनीति में जाति पर विचार करने की आवश्यकता पर और बल दिया। नारीवादी आंदोलनों को इस तथ्य का सामना करना पड़ा कि जाति-आधारित पदानुक्रमों और उत्पीड़न को संबोधित किए बिना लैंगिक समानता प्राप्त नहीं की जा सकती।

### 3.5.3 सांप्रदायिक तनाव और पंथनिरपेक्षता

यह उप-शीर्षक बढ़ती सांप्रदायिकता, विशेषकर 1992 के बाद, द्वारा भारत के पंथनिरपेक्ष ढाँचे के सामने खड़ी चुनौतियों को संबोधित करता है। आधुनिक सांप्रदायिकता का प्रभाव कभी-कभार होने वाले दंगों या विरोध-प्रदर्शनों से कहीं आगे तक फैला है और भारत के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक ताने-बाने में गहराई तक पैठ बनाता है। इसके परिणाम केवल तात्कालिक पीड़ितों को ही नहीं, बल्कि पूरे समुदायों और राष्ट्र के विकास-पथ को प्रभावित करते हैं।

#### आर्थिक परिणाम

सांप्रदायिक तनाव भारतीय समाज पर महत्वपूर्ण आर्थिक लागत थोपते हैं। सांप्रदायिक हिंसा-प्रवण क्षेत्रों में प्रायः निवेश घट जाता है, क्योंकि व्यवसाय उन स्थानों से बचते हैं जिन्हें अस्थिर माना जाता है। उदाहरण के लिए, 2002 के गुजरात दंगों के कारण भारी आर्थिक नुकसान हुआ, जिसमें छोटे व्यवसायों और अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को व्यवधान की सबसे अधिक मार झेलनी पड़ी।

इसके अलावा, सांप्रदायिकता आर्थिक सहयोग में कृत्रिम बाधाएँ पैदा करती है। जब समुदाय एक-दूसरे पर संदेह करते हैं, तो उनके परस्पर लाभकारी व्यापार, साझेदारी या रोज़गार संबंधों में संलग्न होने की संभावना कम होती है। इससे समग्र आर्थिक कुशलता घटती है और गरीबी के चक्र बने रहते हैं।

#### सामाजिक विखंडन

सांप्रदायिकता उस सामाजिक विश्वास को धीरे-धीरे क्षीण करती है जो विविध समुदायों को एक साथ बाँधता है। सांप्रदायिक घटनाओं के बाद मिश्रित मोहल्ले प्रायः धार्मिक आधार पर बँट जाते हैं, जिससे समुदायों के बीच भौतिक और मनोवैज्ञानिक अवरोध बनते हैं। ऐसे वातावरण में पलने वाले बच्चे ऐसे पूर्वाग्रह आत्मसात कर लेते हैं जिनसे वयस्क होने पर उबरना कठिन हो जाता है।

जब सांप्रदायिक विचार पाठ्यक्रम-निर्णयों, शिक्षक-नियुक्तियों या विद्यार्थियों के प्रवेश को प्रभावित करते हैं, तो शिक्षा प्रणाली को भी हानि होती है। आलोचनात्मक चिंतन और पंथनिरपेक्ष मूल्यों को बढ़ावा देने के बजाय शैक्षणिक संस्थान सांप्रदायिक कुसंस्कारण के स्थल बन सकते हैं।

### राजनीतिक ध्रुवीकरण

सांप्रदायिकता मुद्दा-आधारित अभियानों के बजाय वोट-बैंक की राजनीति को प्रोत्साहित करके लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को विकृत करती है। राजनेताओं को जटिल शासन-चुनौतियों का समाधान करने की तुलना में धार्मिक अपीलों के माध्यम से मतदाताओं को संगठित करना आसान लगता है। इससे शहरी नियोजन, पर्यावरण संरक्षण या आर्थिक सुधार जैसे महत्वपूर्ण मुद्दों पर नीतिगत पंगुता आ जाती है।

यह परिघटना संवैधानिक प्राधिकारियों की तुलना में धार्मिक नेताओं या सांप्रदायिक संगठनों के प्रति निष्ठा को बढ़ावा देकर लोकतांत्रिक संस्थाओं को भी कमज़ोर करती है। जब नागरिक नागरिक कर्तव्यों की तुलना में धार्मिक पहचान को प्राथमिकता देते हैं, तो विधि के शासन और लोकतांत्रिक जवाबदेही को बनाए रखना कठिन हो जाता है।

- **अयोध्या विवाद :** राम जन्मभूमि आंदोलन और बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने हिंदू-मुस्लिम तनावों को तीव्र किया, जिससे दंगे भड़के।
- **पंथनिरपेक्षता पर बहसें :** बुद्धिजीवियों ने भारत की बहुलतावादी परंपराओं को सांप्रदायिक चुनौतियों के साथ संतुलित करने पर बहस की।
- **सांस्कृतिक प्रतिक्रियाएँ :** सलमान रुश्दी की 'मिडनाइट्स चिल्ड्रन' (Midnight's Children) और दीपा मेहता की 'फायर' (Fire) जैसे साहित्य और सिनेमा ने इन मुद्दों से जुड़ाव दिखाया।

### 3.5.4 सांस्कृतिक बदलाव और वैश्वीकरण

यह उप-शीर्षक पड़ताल करता है कि वैश्वीकरण ने मीडिया, सिनेमा और उपभोक्तावाद के माध्यम से भारतीय संस्कृति को कैसे रूपांतरित किया। सांस्कृतिक वैश्वीकरण उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके द्वारा सांस्कृतिक तत्वों, विचारों, प्रथाओं और मूल्यों का विश्वभर में आदान-प्रदान और प्रसार होता है, जिसके परिणामस्वरूप प्रायः सांस्कृतिक पहचानों का अभिसरण और साझा वैश्विक मानदंडों का उदय होता है। संचार प्रौद्योगिकियों, जनसंचार माध्यमों और अंतरराष्ट्रीय यात्रा में प्रगति ने इस परिघटना को उल्लेखनीय रूप से तेज़ किया है। सांस्कृतिक वैश्वीकरण का प्रभाव बहुआयामी है: जहाँ यह अधिक परस्पर-जुड़ी दुनिया के निर्माण को सुगम बनाता है, वहीं यह सांस्कृतिक समरूपीकरण, स्थानीय परंपराओं के संरक्षण और नई पहचानों के निर्माण के बारे में प्रश्न भी उठाता है। जैसे-जैसे वैश्विक संपर्क गहरे होते हैं, विश्वभर के लोग विदेशी संस्कृतियों, भाषाओं और जीवन-शैलियों के संपर्क में अधिकाधिक आते हैं, जिससे प्रायः वैश्विक पहचानों का निर्माण होता है। तथापि, सांस्कृतिक वैश्वीकरण केवल स्थानीय संस्कृतियों को वैश्विक संस्कृतियों से प्रतिस्थापित नहीं करता; बल्कि इसके परिणामस्वरूप प्रायः स्थानीय परंपराओं का संकरण या अनुकूलन होता है, जो वैश्विक प्रभावों को स्वदेशी प्रथाओं के साथ मिलाता है। ये गतिशीलताएँ इस बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती हैं कि वैश्वीकृत विश्व में संस्कृतियाँ कैसे परस्पर क्रिया करती हैं और वैश्विक दबावों के सामने व्यक्ति और समुदाय अपनी स्थानीय परंपराओं को कैसे सँभालते हैं।

- **डिजीटल मीडिया का नया दौर :** निजी टीवी चैनलों (जैसे स्टार टीवी) और केबल

नेटवर्कों ने वैश्विक सांस्कृतिक प्रभाव प्रस्तुत किए।

- **सिनेमा का विकास :** बॉलीवुड और क्षेत्रीय फ़िल्मों ने वैश्विक सौंदर्यशास्त्र को अपनाते हुए सामाजिक मुद्दों को उठाया।
- **उपभोक्तावाद :** बहुराष्ट्रीय ब्रांडों ने शहरी जीवन-शैली को रूपांतरित किया, जो आर्थिक उदारीकरण के सांस्कृतिक प्रभाव को दर्शाता था।

## 3.6 विदेश नीति में बदलाव

यह खंड वैश्विक परिवर्तनों के प्रत्युत्तर में भारत की विदेश नीति के अनुकूलनों का मूल्यांकन करता है, जिनमें शीत युद्ध का अंत, नई क्षेत्रीय संलग्नताएँ और परमाणु दृढ़ता शामिल हैं।

### 3.6.1 शीत युद्ध का अंत और उसका प्रभाव

शीत युद्ध के दौरान भारत की विदेश नीति में रणनीतिक बदलाव आदर्शवाद से व्यावहारिकता की ओर क्रमिक विकास को दर्शाते थे, यद्यपि इस पूरी अवधि में दोनों दृष्टिकोणों के तत्व मौजूद रहे।

**उपलब्धियाँ और सीमाएँ – शीत युद्ध के दौरान भारत की विदेश नीति के मिश्रित परिणाम रहे–**

- **राष्ट्रीय सुरक्षा :** सीमित संसाधनों के बावजूद क्षेत्रीय अखंडता की सफलतापूर्वक रक्षा की और मूल सुरक्षा हितों को आगे बढ़ाया
- **रणनीतिक स्वायत्तता :** सोवियत गुट के साथ बढ़ती निकटता के बावजूद निर्णय-निर्माण की स्वतंत्रता बनाए रखी
- **क्षेत्रीय प्रभाव :** भारत को दक्षिण एशिया की प्रमुख शक्ति के रूप में स्थापित किया
- **आर्थिक विकास :** घरेलू आर्थिक उन्नति के लिए अंतरराष्ट्रीय संबंधों का पूरा लाभ उठाने में विफल रहा। व्यावहारिक बदलावों के बावजूद, कुछ मूल सिद्धांत शीत युद्ध की पूरी अवधि में बने रहे और भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करते रहते हैं:
- **रणनीतिक स्वायत्तता :** स्वतंत्र निर्णय-निर्माण पर निरंतर बल
- **बहु-संरेखण (Multi-alignment) :** विशेष प्रतिबद्धताओं के बिना विविध अंतरराष्ट्रीय साझेदारियाँ बनाए रखना
- **क्षेत्रीय प्रधानता :** दक्षिण एशिया की प्रमुख शक्ति के रूप में भारत की भूमिका की स्थापना
- **प्रतिष्ठा की मान्यता :** एक प्रमुख वैश्विक शक्ति के रूप में मान्यता की खोज

शीत युद्ध के अनुभव ने भारत के अंतरराष्ट्रीय संबंधों के दृष्टिकोण को मौलिक रूप से आकार दिया, और व्यावहारिक संलग्नता के ऐसे प्रतिमान स्थापित किए जो शीत युद्ध के बाद के युग में विकसित तो होंगे, पर मौलिक रूप से नहीं बदलेंगे।

### 3.6.2 1990 के दशक में भारत की विदेश नीति

यह उप-शीर्षक बहुध्रुवीय विश्व की ओर भारत के रणनीतिक पुनर्संयोजन का विवरण देता है, जिसमें क्षेत्रीय और वैश्विक संलग्नता पर बल दिया गया।

- पूर्व की ओर देखो नीति (Look East Policy): 1990 के दशक की सबसे महत्वपूर्ण विदेश नीति पहलों में से एक भारत की "पूर्व की ओर देखो" (Look East) नीति थी। 1991 में प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव द्वारा शुरू की गई यह नीति पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों, विशेषकर ASEAN की तेज़ी से विकसित होती अर्थव्यवस्थाओं, के साथ संलग्नता की ओर भारत का रणनीतिक झुकाव दर्शाती थी। "पूर्व की ओर देखो" नीति अनेक कारकों से प्रेरित थी:

**आर्थिक अवसर :** एशियाई टाइगर्स और उभरती ASEAN अर्थव्यवस्थाओं ने भारतीय वस्तुओं के लिए आशाजनक बाज़ार और निवेश के संभावित स्रोत प्रदान किए।

**सांस्कृतिक पुनर्संबंध :** नीति ने दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ भारत के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

**रणनीतिक संतुलन :** पूर्वी एशियाई देशों के साथ घनिष्ठ संबंधों ने बदलती विश्व-व्यवस्था में भारत को पारंपरिक संबंधों से परे विकल्प प्रदान किए।

आरंभ में मुख्यतः आर्थिक संलग्नता पर केंद्रित, "पूर्व की ओर देखो" नीति ने धीरे-धीरे सुरक्षा और रणनीतिक आयाम भी प्राप्त कर लिए। भारत 1992 में ASEAN का क्षेत्रीय (sectoral) संवाद साझेदार, 1995 में पूर्ण संवाद साझेदार और 1996 में ASEAN क्षेत्रीय मंच का सदस्य बना, जो क्षेत्र के साथ उसके बढ़ते एकीकरण को दर्शाता है। इस नीति ने उस अंतर्मुखी दृष्टिकोण का परित्याग दर्शाया जो भारत की स्वतंत्रता-पश्चात विदेश नीति के अधिकांश भाग की विशेषता रहा था। इसके बजाय इसने आर्थिक अंतर्निर्भरता को अपनाया और यह माना कि भारत की भविष्य की समृद्धि गतिशील एशियाई अर्थव्यवस्थाओं के साथ गहरे एकीकरण से जुड़ी है।

- **अमेरिका के साथ संलग्नता :** संभवतः 1990 के दशक में भारत की विदेश नीति में सबसे नाटकीय बदलाव संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ संबंधों में क्रमिक सुधार था। शीत युद्ध के दशकों के अविश्वास ने एक सतर्क किंतु स्थिर तालमेल का स्थान लिया, क्योंकि दोनों देशों ने शीत युद्ध के बाद की दुनिया में सहयोग के नए आधार खोजे।

**अलगाव से संलग्नता तक :** बेहतर भारत-अमेरिका संबंधों की ओर यात्रा न तो सहज थी और न ही रेखीय। कई कारकों ने इस पिघलाव में योगदान दिया:

**आर्थिक उदारीकरण :** भारत के बाज़ार सुधारों ने अमेरिका के साथ घर्षण के एक प्रमुख स्रोत को हटा दिया, जो लंबे समय से अधिक आर्थिक खुलेपन के लिए दबाव डालता रहा था।

**शीत युद्ध की राजनीति का अंत :** कठोर गुट-राजनीति के विघटन ने दोनों देशों को शीत युद्ध की गणनाओं के बजाय समकालीन हितों के आधार पर संबंधों का पुनर्मूल्यांकन करने की अनुमति दी।

**प्रवासी समुदाय का प्रभाव :** भारतीय-अमेरिकी समुदाय के बढ़ते आर्थिक और राजनीतिक प्रभाव ने दोनों लोकतंत्रों के बीच समझ का सेतु बनाने में मदद की।

इस सुधरते प्रक्षेपवक्र के बावजूद, विशेषकर भारत के परमाणु कार्यक्रम को लेकर, महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बनी रहीं। जब भारत ने प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मई 1998 में पोखरण-II परमाणु परीक्षण किए, तो अमेरिका ने आर्थिक प्रतिबंध लगा दिए। तथापि, इन तनावों ने अंततः जसवंत सिंह-स्ट्रोब टैलबॉट वार्ताओं के माध्यम से परमाणु मुद्दों पर अधिक परिपक्व संवाद को जन्म दिया, जिसने भारत-अमेरिका संबंधों के बाद के रूपांतरण की नींव रखी।

- **गुजराल सिद्धांत :** 1990 के दशक में भारत की विदेश नीति की सोच में एक विशिष्ट योगदान प्रधानमंत्री आई.के. गुजराल से आया, जिन्होंने 1996 में वह स्पष्ट किया जो "गुजराल सिद्धांत" के रूप में जाना गया। इस सिद्धांत ने भारत के निकटतम पड़ोसियों के साथ संबंधों के सिद्धांतों की रूपरेखा दी और क्षेत्रीय कूटनीति के प्रति भारत के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण विकास का प्रतिनिधित्व किया।

गुजराल सिद्धांत के पाँच सिद्धांत थे–

1. भारत पारस्परिकता की माँग नहीं करेगा, बल्कि सद्भावना और विश्वास के साथ जो कुछ दे सकता है, देगा और समायोजन करेगा।
2. किसी भी दक्षिण एशियाई देश को अपने क्षेत्र का उपयोग क्षेत्र के किसी अन्य देश के हितों के विरुद्ध नहीं होने देना चाहिए।
3. किसी भी देश को दूसरे देश के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
4. सभी दक्षिण एशियाई देशों को एक-दूसरे की क्षेत्रीय अखंडता और संप्रभुता का सम्मान करना चाहिए।
5. सभी विवादों का समाधान शांतिपूर्ण द्विपक्षीय वार्ता के माध्यम से किया जाना चाहिए।

इस सिद्धांत ने स्वीकार किया कि दक्षिण एशिया के सबसे बड़े देश के रूप में भारत को अपने छोटे पड़ोसियों के प्रति अधिक उदारता और समायोजन दिखाने की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण ने पिछले दशकों की अधिक आक्रामक क्षेत्रीय नीतियों से एक महत्वपूर्ण बदलाव को चिह्नित किया और पड़ोसी देशों में भारतीय आधिपत्य की धारणा को संबोधित करने का प्रयास किया। यद्यपि गुजराल सरकार के संक्षिप्त कार्यकाल के कारण गुजराल सिद्धांत का क्रियान्वयन सीमित रहा, फिर भी इसके सिद्धांत आने वाले वर्षों में, विशेषकर जल-बँटवारा समझौतों और व्यापार नीतियों में, भारत के पड़ोसी-दृष्टिकोण को प्रभावित करते रहे।

### 3.6.3 परमाणु परीक्षण और वैश्विक स्थिति

1990 के दशक में भारत की विदेश नीति के विकास की परिणति मई 1998 के पोखरण-II परमाणु परीक्षणों में हुई। दशकों तक परमाणु अस्पष्टता बनाए रखने के बाद, भारत ने खुले रूप से स्वयं को परमाणु हथियार संपन्न राज्य घोषित किया, जिसने उसकी रणनीतिक स्थिति और कूटनीतिक संबंधों को मौलिक रूप से बदल दिया।

परमाणु परीक्षण करने का निर्णय अनेक कारकों से प्रेरित था–

- **सुरक्षा चिंताएँ :** चीन-पाकिस्तान परमाणु सहयोग के बढ़ते प्रमाणों ने भारत की रणनीतिक असुरक्षा को लेकर चिंता पैदा की।
- **अंतरराष्ट्रीय दबाव :** 1995 में परमाणु अप्रसार संधि (NPT) के अनिश्चितकालीन विस्तार और व्यापक परमाणु परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) के लिए दबाव ने भारत के परमाणु विकल्पों को स्थायी रूप से सीमित करने का खतरा पैदा किया।
- **घरेलू राजनीति :** भाजपा-नीत सरकार लंबे समय से अधिक दृढ़ परमाणु नीति की वकालत करती रही थी।
- **वैश्विक प्रभाव :** परीक्षणों ने वैश्विक शक्तियों, विशेषकर अमेरिका, के साथ संबंधों में तनाव पैदा किया, किंतु बाद में उनमें सुधार हुआ।
- तात्कालिक अंतरराष्ट्रीय प्रतिक्रिया कठोर थी, जिसमें अमेरिका और कई अन्य देशों ने आर्थिक प्रतिबंध लगाए। तथापि, दीर्घकालिक कूटनीतिक परिणाम अधिक सूक्ष्म थे। परीक्षणों ने अंततः भारत को एक ज़िम्मेदार परमाणु शक्ति के रूप में वास्तविक (de facto) मान्यता दिलाई, जिसकी परिणति एक दशक बाद ऐतिहासिक भारत-अमेरिका नागरिक परमाणु समझौते में हुई।
- **प्रमुख शक्ति का दर्जा :** आर्थिक वृद्धि, परमाणु क्षमता और कूटनीति ने भारत को एक उभरते वैश्विक खिलाड़ी के रूप में स्थापित किया। 1990 के दशक के विदेश नीति नवाचारों ने आने वाले दशकों में भारत के कूटनीतिक दृष्टिकोणों की महत्वपूर्ण नींव रखी।
- आर्थिक उदारीकरण ने भारत के बढ़ते वैश्विक आर्थिक प्रभाव की नींव तैयार की।
- "पूर्व की ओर देखो" नीति बाद की सरकारों के अधीन अधिक महत्वाकांक्षी "पूर्व में कार्य करो" (Act East) नीति के रूप में विकसित हुई।
- परमाणु शस्त्रीकरण अंततः वैश्विक परमाणु व्यवस्था में भारत के अद्वितीय समायोजन की ओर ले गया।
- संयुक्त राज्य अमेरिका के साथ पुनःसमायोजन ने उस रणनीतिक साझेदारी को संभव बनाया जो 21वीं सदी में विकसित हुई।
- गुजराल सिद्धांत के सिद्धांतों ने "पड़ोसी पहले" (Neighborhood First) जैसी बाद की पड़ोस-पहलों को प्रभावित किया।

1990 का दशक गहन संक्रमण का काल था जिसमें भारत ने मूल सिद्धांतों को छोड़े बिना पुराने दृष्टिकोणों को त्यागा। दशक की कूटनीति ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों में शक्ति-समीकरणों के प्रति बढ़ती यथार्थवादिता को प्रतिबिंबित किया, साथ ही वैश्विक मामलों में भारत की विशिष्ट आवाज़ को बनाए रखा। संभवतः सबसे महत्वपूर्ण यह कि इस युग में भारत का एक अपेक्षाकृत अंतर्मुखी, आर्थिक रूप से अलग-थलग क्षेत्रीय शक्ति से एक उत्तरोत्तर एकीकृत वैश्विक खिलाड़ी के रूप में विकास हुआ, जो अनेक मोर्चों पर अंतरराष्ट्रीय समुदाय के साथ सक्रिय रूप से जुड़ने को तैयार था।

## 3.7 निष्कर्ष

1980 और 1990 के दशक भारत के कांग्रेस-प्रभुत्व वाले समाजवादी राज्य से एक उदारीकृत, बहुदलीय लोकतंत्र में संक्रमण को चिह्नित करते हैं, जिसकी वैश्विक महत्वाकांक्षाएँ थीं। मंडल आयोग और बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने जाति और सांप्रदायिक गतिशीलताओं को नया आकार दिया, जबकि 1991 के सुधारों ने भारत को वैश्विक अर्थव्यवस्था में एकीकृत किया। सामाजिक आंदोलनों ने हाशिये पर पड़े समूहों को सशक्त किया और सांस्कृतिक बदलावों ने वैश्वीकरण के प्रभाव को दर्शाया। विदेश नीति के अनुकूलन, जिनकी परिणति 1998 के परमाणु परीक्षणों में हुई, ने भारत की रणनीतिक स्वायत्तता को सुदृढ़ किया। इन निर्णायक मोड़ों ने समकालीन भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिदृश्य की नींव रखी।

## 3.8 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. मंडल आयोग की सिफ़ारिशें लागू किए जाने के समय भारत के प्रधानमंत्री कौन थे?

   A) राजीव गांधी

   B) वी.पी. सिंह

   C) पी.वी. नरसिम्हा राव

   D) अटल बिहारी वाजपेयी

2. भारत में 1991 के भुगतान-संतुलन संकट का प्राथमिक कारण क्या था?

   A) उच्च राजकोषीय घाटे

   B) वैश्विक मंदी

   C) कृषि उत्पादकता में गिरावट

   D) राजनीतिक अस्थिरता

3. 1992 की किस घटना ने भारत के पंथनिरपेक्ष ताने-बाने को उल्लेखनीय रूप से प्रभावित किया?

   A) मंडल आयोग का क्रियान्वयन

   B) बाबरी मस्जिद का विध्वंस

   C) पोखरण-II परमाणु परीक्षण

   D) आर्थिक उदारीकरण

4. दक्षिण-पूर्व एशिया के साथ संबंध मज़बूत करने के लिए पी.वी. नरसिम्हा राव के अधीन कौन-सी नीति शुरू की गई?

   A) गुटनिरपेक्षता नीति

B) पूर्व की ओर देखो नीति

C) गुजराल सिद्धांत

D) परमाणु सिद्धांत

5. 1980 के दशक के अंत में राजीव गाँधी की सरकार को कलंकित करने वाले घोटाले का क्या नाम था?

A) कोयला घोटाला

B) बोफ़ोर्स घोटाला

C) 2G घोटाला

D) हवाला कांड

6. 1989 में राष्ट्रीय मोर्चा सरकार का नेतृत्व किस दल ने किया?

A) कांग्रेस

B) भाजपा

C) जनता दल

D) CPI(M)

7. 1990 के दशक में भारत की औसत GDP वृद्धि दर क्या थी?

A) 4.5%

B) 5.8%

C) 6.2%

D) 7.0%

8. 1992 में किन संवैधानिक संशोधनों ने स्थानीय शासन में महिलाओं के लिए सीटें आरक्षित कीं?

A) 70वाँ और 71वाँ

B) 73वाँ और 74वाँ

C) 75वाँ और 76वाँ

D) 77वाँ और 78वाँ

9. 1991 के आर्थिक सुधारों के दौरान वित्त मंत्री कौन थे?

A) पी. चिदंबरम

B) मनमोहन सिंह

C) यशवंत सिन्हा

D) जसवंत सिंह

10. 1950 के दशक में कौन-सा आंदोलन प्रमुखता से उभरा?

A) मंडल आंदोलन

B) राम जन्मभूमि आंदोलन

C) दलित आंदोलन

D) महिला आंदोलन

11. 1990 के दशक में किस दल का उदय हिंदुत्व विचारधारा से जुड़ा था?

A) कांग्रेस

B) भाजपा

C) जनता दल

D) BSP

12. गुजराल सिद्धांत का प्राथमिक केंद्र-बिंदु क्या था?

A) आर्थिक उदारीकरण

B) पड़ोसियों के साथ गैर-पारस्परिक संबंध

C) परमाणु निरस्त्रीकरण

D) सैन्य आधुनिकीकरण

13. 1998 में किस घटना ने भारत के परमाणु शक्ति के रूप में उभरने को चिह्नित किया?

A) ऑपरेशन ब्लू स्टार

B) पोखरण-II परीक्षण

C) कारगिल युद्ध

D) बाबरी मस्जिद का विध्वंस

14. बहुजन समाज पार्टी (BSP) के उदय से कौन-सा नेता जुड़ा था?

A) लालू प्रसाद यादव

B) कांशीराम

C) मुलायम सिंह यादव

D) वी.पी. सिंह

15. 1991 के आर्थिक सुधारों की एक प्रमुख आलोचना क्या थी?

A) अत्यधिक सरकारी खर्च

B) रोज़गारविहीन वृद्धि

C) कृषि पर अत्यधिक निर्भरता

D) विदेशी निवेश की कमी

16. खाड़ी युद्ध कौन-सा है?

A) कारगिल युद्ध

B) इराक-कुवैत युद्ध

C) 1971 का भारत-पाक युद्ध

D) भारत-चीन युद्ध

17. किस शैक्षणिक आंदोलन ने 1980 और 1990 के दशकों में हाशिये पर पड़े समूहों के इतिहासों को उजागर किया?

A) प्रत्यक्षवादी परंपरा

B) सबऑल्टर्न अध्ययन (Subaltern Studies)

C) एनाल्स स्कूल

D) मार्क्सवादी इतिहास-लेखन

18. 1991 के सुधारों के बाद कौन-सा क्षेत्र विकास का मुख्य इंजन बना?

A) सार्वजनिक क्षेत्र

B) कृषि क्षेत्र

C) निजी क्षेत्र

D) अनौपचारिक क्षेत्र

19. किस नेता ने राम जन्मभूमि आंदोलन से जुड़ी रथ यात्रा का नेतृत्व किया?

A) अटल बिहारी वाजपेयी

B) एल.के. आडवाणी

C) मुरली मनोहर जोशी

D) उमा भारती

20. 1991 की किस वैश्विक घटना ने भारत की विदेश नीति के पुनर्संयोजन को आवश्यक बना दिया?

A) खाड़ी युद्ध

B) सोवियत संघ का विघटन

C) यूरोपीय संघ का गठन

D) रंगभेद का अंत

## 3.9 बहुविकल्पीय प्रश्नों (MCQs) के उत्तर

1. B
2. A
3. B
4. B
5. B
6. C
7. B
8. B
9. B
10. C
11. B
12. B
13. B
14. B
15. B
16. B
17. B
18. C
19. B
20. B

## 3.10 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री


- Guha, Ramachandra. *India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy. HarperCollins, 2007.*
- Jaffrelot, Christophe. *The Hindu Nationalist Movement in India*. Columbia University Press, 1996.
- Kohli, *Atul. Democracy and Development in India: From Socialism to Pro-*

*Business*. Oxford University Press, 2009.

- Hasan, Zoya (ed.). *Politics and the State in India*. Sage Publications, 2000.
- Dreze, Jean, and Amartya Sen. *India: Economic Development and Social Opportunity*. Oxford University Press, 1995.
- Menon, Nivedita, and Aditya Nigam. *Power and Contestation: India Since 1989*. Zed Books, 2007.
- Bajpai, Kanti P. (ed.). *India's National Security: A Reader*. Oxford University Press, 2013.
- Frankel, Francine R. *India's Political Economy*, 1947–2004. Oxford University Press, 2005.
- Chandra, Bipan, et al. *India Since Independence*. Penguin Books, 2008.
- Brass, Paul R. *The Politics of India Since Independence*. Cambridge University Press, 1994.

## इकाई – 4

# नया सार्वजनिक क्षेत्र

(The New Public Sphere)

## संरचना


4.1 उद्देश्य

4.2 परिचय

4.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा

- 4.3.1 ऐतिहासिक संदर्भ
- 4.3.2 भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ

4.4 लोकप्रिय सिनेमा और सार्वजनिक क्षेत्र

- 4.4.1 भारतीय सिनेमा का उदय
- 4.4.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव
- 4.4.3 व्यावसायीकरण और चुनौतियाँ

4.5 समानांतर सिनेमा: एक आलोचनात्मक स्वर

- 4.5.1 उत्पत्ति और प्रमुख व्यक्तित्व
- 4.5.2 विषय-वस्तु और सौंदर्यशास्त्र
- 4.5.3 1990 के दशक में पतन

4.6 सार्वजनिक क्षेत्र में कला और साहित्य

- 4.6.1 साहित्य
- 4.6.2 कला
- 4.6.3 अंतर्संबंध

4.7 विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा

- 4.7.1 विज्ञान और प्रौद्योगिकी
- 4.7.2 शिक्षा
- 4.7.3 सार्वजनिक क्षेत्र पर प्रभाव

4.8 विभिन्न क्षेत्रों का पारस्परिक संबंध

4.9 चुनौतियाँ और सीमाएँ

4.10 निष्कर्ष

4.11 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

4.12 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर (MCQs)

4.13 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री

## 4.1 उद्देश्य

इस इकाई को पूरा करने के बाद, शिक्षार्थी निम्नलिखित में सक्षम होंगे–

- सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा और स्वतंत्रता-पश्चात भारत (1950–1990) में उसके विकास को समझना।
- सार्वजनिक विमर्श और सांस्कृतिक पहचान को आकार देने में लोकप्रिय तथा समानांतर सिनेमा की भूमिका का विश्लेषण करना।
- नए सार्वजनिक क्षेत्र में कला और साहित्य के योगदान की जाँच करना।
- सामाजिक परिवर्तन पर विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा के प्रभाव की पड़ताल करना।
- आधुनिक भारतीय पहचान के निर्माण में इन क्षेत्रों के पारस्परिक संबंध का मूल्यांकन करना।
- बहुविकल्पीय प्रश्नों के माध्यम से उस काल की सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक गतिशीलता का आलोचनात्मक आकलन करना।
- समकालीन भारत में नए सार्वजनिक क्षेत्र पर आगे के अध्ययन के लिए प्रमुख स्रोतों की पहचान करना।

## 4.2 परिचय

1950 से 1990 का काल भारत के स्वतंत्रता-पश्चात इतिहास का एक निर्णायक युग था, जिसकी विशेषता एक गतिशील सार्वजनिक क्षेत्र का उदय थी। यूरगन हैबरमास की सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा — यानी तर्कसंगत-आलोचनात्मक बहस का ऐसा स्थान जो जनमत को प्रभावित करता है — भारत की विविध भाषाई, सांस्कृतिक और सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों के कारण यहाँ एक अनूठा रूप ले लेती है। यह इकाई जाँचती है कि इस काल में लोकप्रिय और समानांतर सिनेमा, कला, साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा ने भारत के सार्वजनिक क्षेत्र को किस प्रकार आकार दिया। ये क्षेत्र न केवल एक नवस्वतंत्र राष्ट्र की आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते थे, बल्कि परंपरा और आधुनिकता, शहरी और ग्रामीण विभाजन तथा वैश्विक और स्थानीय प्रभावों के बीच के तनावों से भी जूझते थे।

बॉलीवुड द्वारा प्रतिनिधित्व किया जाने वाला लोकप्रिय सिनेमा एक जन-माध्यम बना जिसने मनोरंजन भी किया और सांस्कृतिक आख्यानों को भी आकार दिया, जबकि समानांतर सिनेमा ने सामाजिक मुद्दों पर आलोचनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत किए। कला और साहित्य ने बौद्धिक तथा रचनात्मक मंच उपलब्ध कराए, और विज्ञान, प्रौद्योगिकी तथा शिक्षा में हुई प्रगति ने भारत के आधुनिकीकरण को गति दी। इन सभी तत्वों ने मिलकर एक बहुलवादी सार्वजनिक क्षेत्र का निर्माण किया जो भारत की जटिल पहचान को प्रतिबिंबित करता था। यह इकाई इन योगदानों, उनके अंतर्संबंधों और उनके सामने आई चुनौतियों की पड़ताल करती है, जिससे समकालीन भारत में नए सार्वजनिक क्षेत्र की व्यापक समझ मिलती है।

## 4.3 भारत में सार्वजनिक क्षेत्र की अवधारणा

यूरगन हैबरमास की सार्वजनिक क्षेत्र की समझ के अनुसार यह ऐसा स्थान है जहाँ नागरिक और जनसमूह स्वतंत्र रूप से एकत्र होते हैं और अपनी राय व्यक्त करते हैं, जिससे जनमत का निर्माण होता है। अतः सार्वजनिक क्षेत्र और जनमत परस्पर संबद्ध हैं।

स्वतंत्रता-पश्चात भारत में सार्वजनिक क्षेत्र एक बहुआयामी स्थान था, जिसे औपनिवेशिक विरासत, लोकतांत्रिक आकांक्षाओं और सांस्कृतिक विविधता ने आकार दिया था। हैबरमास के यूरोपीय मॉडल के विपरीत, जो बुर्जुआ विमर्श पर केंद्रित था, भारत का सार्वजनिक क्षेत्र समावेशिता, विवाद-प्रतिवाद और राज्य के हस्तक्षेप की विशेषताओं वाला था।

### 4.3.1 ऐतिहासिक संदर्भ

भारत में "संचार" (communication) की अवधारणा में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया है। ऐतिहासिक रूप से यह पत्र-लेखन, सूचना पहुँचाने की तकनीक और यहाँ तक कि परिवहन जैसी गतिविधियों से घनिष्ठ रूप से जुड़ी थी। भारत में औपनिवेशिक सरकार की रिपोर्टें इस शब्द का प्रयोग राजस्व के उद्देश्य से माल की आवाजाही और लोगों की आवाजाही के लिए करती थीं। उस समय संचार राजनीतिक अर्थव्यवस्था और राजस्व संग्रह के संदर्भ में निहित था, और उसका अर्थ उसी विशिष्ट संदर्भ से तय होता था।

किंतु "संचार" का अर्थ विकसित हुआ है। आज इसे आमतौर पर उसके तात्कालिक संदर्भ से अलग कर दिया जाता है, और "संचार" स्वयं ही किसी घटना को संदर्भ और महत्व प्रदान करने लगता है। "मुद्रण क्रांति", "टेलीविज़न युग" या "डिजिटल युग" जैसे शब्द ऐतिहासिक कालों का वर्णन करने के लिए प्रयोग किए जाते हैं, जो यह संकेत देते हैं कि ऐतिहासिक परिवर्तन में प्रौद्योगिकी निर्धारक भूमिका निभाती है। इस दृष्टिकोण में प्रायः एक आधुनिकतावादी नज़रिया निहित होता है, जिसमें प्रत्येक नया माध्यम एक ऐतिहासिक काल को परिभाषित करता माना जाता है, जबकि पुराने माध्यमों को केवल कार्यात्मक भूमिका तक सीमित कर दिया जाता है।

अरविंद राजगोपाल का तर्क है कि विशिष्ट राजनीतिक संदर्भों में अनेक तत्व "माध्यम" का कार्य कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, 1873 के पाबना विद्रोह के दौरान ढोल और भैंस के सींग (बिगुल) पर औपनिवेशिक प्रतिबंध इस बात की स्वीकृति थी कि बड़े पैमाने पर निरक्षर ग्रामीण आबादी में वाद्ययंत्र किसानों के विद्रोह के साधन बन गए थे। 1930 की नमक यात्रा ने दिखाया कि घर की एक साधारण वस्तु राष्ट्रवादी लामबंदी का प्रतीक बन सकती है। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि मध्यस्थता (mediation) एक सामाजिक प्रक्रिया है जो पारंपरिक "मीडिया" से आगे जाती है और उसे व्यापक अर्थों में समझा जाना चाहिए, न कि केवल किसी विशिष्ट वस्तु, तकनीक या संस्था के कार्य के रूप में।

"सार्वजनिक क्षेत्र" की अवधारणा मीडिया और उसके प्रभाव संबंधी चर्चाओं के केंद्र में है। यह उस स्थान को संदर्भित करती है जहाँ प्रचार-प्रसार (publicity) कार्य करता है और जनमत को आकार देता है। पश्चिमी यूरोप के 19वीं सदी के बुर्जुआ सार्वजनिक क्षेत्र पर यूरगन हैबरमास के कार्य ने यह पड़ताल की कि पत्र-लेखन, उपन्यास पढ़ने और आलोचनात्मक चर्चा जैसी प्रथाओं ने आधुनिक लोकतंत्र में व्यक्तिगत भागीदारी के विकास में कैसे योगदान दिया। हैबरमास के विशिष्ट तर्कों पर बहस हो सकती है, फिर भी संचार के रूपों और उनके सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों के संबंध पर उनके ज़ोर का व्यापक प्रभाव रहा है।

बेनेडिक्ट एंडरसन की "कल्पित समुदाय" (imagined communities) की अवधारणा भी सार्वजनिक

क्षेत्र की हमारी समझ में योगदान देती है। एंडरसन का तर्क था कि साझा भाषा में मुद्रित वस्तुओं के बाज़ार का निर्माण एक कल्पित भाषाई समुदाय को जन्म देता है, जो आगे चलकर राष्ट्रवादी लामबंदी का आधार तैयार करता है। यह "कल्पित समुदाय" भौगोलिक रूप से बिखरे हुए लोगों को स्वयं को परस्पर जुड़ा हुआ समझने में सक्षम बनाता है — जातीयता, नस्ल या धर्म के पारंपरिक बंधनों से नहीं, बल्कि एक साझा पहचान से।

तथापि, मुद्रण-पूँजीवाद पर एंडरसन का ज़ोर किसी सार्वजनिक क्षेत्र के संचार-परिवेश को एकरूप बना देता है। वास्तविकता में, मुद्रण पुराने माध्यमों की जगह नहीं लेता। औपनिवेशिक संदर्भों में, अफ़वाह जैसे देशज संचार-साधनों को अप्रामाणिक ठहराने के प्रयासों ने प्रायः लामबंदी के औज़ार के रूप में उनके महत्व को और पुष्ट ही किया। मुद्रण के आगमन के साथ पुराने माध्यम फिर से जीवंत हो सकते थे, विशेषकर उन परिस्थितियों में जहाँ साक्षरता सीमित थी और जन-आंदोलन आम थे।

रणजीत गुहा का कार्य दर्शाता है कि औपनिवेशिक राज्य अफ़वाहों और ढोल तथा सींग जैसे श्रव्य या दृश्य संकेतों के संप्रेषण को खतरा मानता था। क्रिस्टोफर पिन्नी द्वारा भारतीय कैलेंडर कला का विश्लेषण बताता है कि धार्मिक और राष्ट्रवादी विषय किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़ते हैं, जो विशुद्ध धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन को चुनौती देता है। ये उदाहरण दर्शाते हैं कि संचार के संदर्भ ऐतिहासिक और राजनीतिक परिस्थितियों के साथ-साथ उन सामग्रियों और प्रथाओं से भी आकार लेते हैं जिनके माध्यम से सूचना पहुँचाई जाती है।

1947 में भारत की स्वतंत्रता एक मोड़ थी, जिसमें राष्ट्र-निर्माण में राज्य ने केंद्रीय भूमिका निभाई। नेहरूवादी दृष्टि ने धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद और वैज्ञानिक प्रगति पर ज़ोर दिया, जिसने सार्वजनिक क्षेत्र को प्रभावित किया। फ़िल्म्स डिवीज़न ऑफ़ इंडिया (1948), साहित्य अकादेमी (1954) और भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IITs, 1951 से आरंभ) जैसी संस्थाएँ सांस्कृतिक, बौद्धिक और वैज्ञानिक विमर्श को बढ़ावा देने के लिए स्थापित की गईं। सार्वजनिक क्षेत्र जमीनी आंदोलनों, क्षेत्रीय आवाज़ों और मीडिया के माध्यम से भी उभरा, जो एक विविधतापूर्ण राष्ट्र की आकांक्षाओं और चुनौतियों को प्रतिबिंबित करता था।

1950 के दशक में लोकतांत्रिक संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण हुआ, और 1951–52 के प्रथम आम चुनाव सहभागी शासन की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम थे। मुद्रण माध्यमों, रेडियो और सिनेमा के प्रसार ने सार्वजनिक विमर्श की पहुँच बढ़ाई, हालाँकि साक्षरता और आर्थिक बाधाओं के कारण पहुँच सीमित रही। 1980 के दशक तक टेलीविज़न ने सार्वजनिक क्षेत्र का और अधिक लोकतंत्रीकरण किया और राष्ट्रीय आख्यानों को ग्रामीण तथा शहरी दोनों दर्शकों तक पहुँचाया।

### 4.3.2 भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र की विशेषताएँ

- **ऐतिहासिक विकास:** भारत में सार्वजनिक क्षेत्र का विकास उसकी औपनिवेशिक जड़ों और राष्ट्रीय आंदोलन से हुआ, जिसने उसका अपना विशिष्ट ऐतिहासिक संदर्भ और चुनौतियाँ रचीं।
- **प्रभुत्व और बहिष्करण:** ऐतिहासिक रूप से एक प्रभुत्वशाली सार्वजनिक क्षेत्र रहा है जो शासक सामाजिक समूहों के मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है, जिससे अल्पसंख्यक समूहों और उनके मुद्दों की उपेक्षा तथा हाशियाकरण होता रहा है।
- **सांस्कृतिक विविधता और संघर्ष:** यह भारत की विविध संस्कृतियों से आकार लेता है, जिससे विभिन्न मूल्यों और विश्वासों का जटिल अंतर्क्रिया बनता है, और कभी-कभी

बहुसंख्यकवादी मानदंडों तथा अल्पसंख्यक संस्कृतियों के प्रतिनिधित्व के बीच संघर्ष उत्पन्न होता है।

- **जन-माध्यमों का प्रभाव:** पारंपरिक जन-माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, किंतु उनकी भूमिका अधिक व्यावसायिक और कम सामाजिक रूप से उत्तरदायी हो गई है, जिससे कुछ नागरिकों का हाशियाकरण बढ़ा है।
- **नए मीडिया का उदय:** नई संचार तकनीकों, विशेषकर मोबाइल फ़ोन, के आगमन ने सार्वजनिक विमर्श के लिए नए और अधिक सुलभ मंच बनाए हैं, जो संभावित रूप से संचार का लोकतंत्रीकरण कर सकते हैं और जन-माध्यमों द्वारा किए गए कुछ हाशियाकरण को सुधार सकते हैं।
- **विविधता:** भारत की भाषाई और सांस्कृतिक विविधता ने अनेक सार्वजनिक क्षेत्रों को जन्म दिया, जिनमें से प्रत्येक की अलग चिंताएँ हैं। उदाहरण के लिए, हिंदी, तमिल और बंगाली मीडिया ने एक राष्ट्रीय सार्वजनिक क्षेत्र के साथ-साथ क्षेत्रीय सार्वजनिक क्षेत्र भी रचे।
- **समावेशिता और बहिष्करण:** जहाँ सिनेमा और रेडियो ने सार्वजनिक क्षेत्र को सुलभ बनाया, वहीं निरक्षरता और गरीबी ने आबादी के बड़े हिस्सों को इससे बाहर रखा।
- **विवाद-प्रतिवाद:** सार्वजनिक क्षेत्र वैचारिक बहसों का स्थल था, जिनमें धर्मनिरपेक्षता बनाम सांप्रदायिकता, समाजवाद बनाम पूँजीवाद, और परंपरा बनाम आधुनिकता जैसे विषय शामिल थे।
- **राज्य का प्रभाव:** राज्य ने सेंसरशिप, वित्तपोषण और संस्थागत समर्थन के माध्यम से सार्वजनिक क्षेत्र को आकार दिया, प्रायः नियंत्रण और रचनात्मक स्वतंत्रता के बीच संतुलन साधते हुए।
- **आभासी विमर्श की चुनौतियाँ:** डिजिटल चर्चाओं ने नए रास्ते खोले हैं, किंतु विमर्श की गुणवत्ता को लेकर चिंताएँ भी उठाई हैं, क्योंकि इसके कम तर्कपरक और अधिक अव्यवस्थित हो जाने का जोखिम है।
- **प्रति-सार्वजनिक क्षेत्रों का उदय:** प्रभुत्वशाली सार्वजनिक क्षेत्र की बहिष्कारी प्रकृति के कारण वैकल्पिक या "प्रति-सार्वजनिक क्षेत्र" (counter-publics) उभरे हैं, जैसे दलित सार्वजनिक क्षेत्र, जो हाशिये की आवाज़ों को मंच प्रदान करते हैं।
- **हैबरमास मॉडल की आलोचना:** कुछ विद्वान तर्कसंगत, विवेकपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के पारंपरिक हैबरमासियन मॉडल को अत्यंत संकीर्ण मानकर उसकी आलोचना करते हैं, और भारतीय संदर्भ में वाक्पटुता, मिथक और रंगमंच जैसे "सौंदर्यात्मक-भावात्मक" (aesthetic-affective) संचार-रूपों के महत्व को रेखांकित करते हैं।

## 4.4 लोकप्रिय सिनेमा और सार्वजनिक क्षेत्र

लोकप्रिय सिनेमा, विशेषकर बॉलीवुड, भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में एक प्रमुख शक्ति था, जो मनोरंजन, सांस्कृतिक अभिव्यक्ति और सामाजिक टिप्पणी के माध्यम के रूप में कार्य करता था।

### 4.4.1 भारतीय सिनेमा का उदय

1950 का दशक, जिसे अक्सर बॉलीवुड का स्वर्ण युग कहा जाता है, राज कपूर, गुरु दत्त और बिमल रॉय

जैसे प्रतिष्ठित फ़िल्मकारों के उदय का साक्षी बना। 'आवारा' (1951), 'प्यासा' (1957) और 'मदर इंडिया' (1957) जैसी फ़िल्मों ने गरीबी, न्याय और राष्ट्र-निर्माण के विषयों को उठाया, जो स्वतंत्रता-पश्चात की चुनौतियों से जूझ रहे राष्ट्र के साथ गहराई से जुड़ गए। उदाहरण के लिए, 'मदर इंडिया' ने एक ग्रामीण स्त्री के संघर्ष को चित्रित किया, जो भारत की दृढ़ता और नैतिक बल का प्रतीक था। इन फ़िल्मों ने मेलोड्रामा, संगीत और सामाजिक संदेश को एक साथ पिरोया, जिससे वे विविध दर्शकों के लिए सुलभ बनीं।

सिनेमा हॉलों की वृद्धि और फ़िल्म्स डिवीज़न के वृत्तचित्रों ने, जिन्होंने राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया, बॉलीवुड की पहुँच को और बढ़ाया। उद्योग की स्टार प्रणाली ने, जिसमें दिलीप कुमार, देव आनंद और नरगिस जैसे कलाकार थे, ऐसे सांस्कृतिक प्रतीक रचे जिन्होंने जन-रुचि और आकांक्षाओं को प्रभावित किया।

1950 का दशक अक्सर भारतीय सिनेमा का "स्वर्ण युग" कहा जाता है — एक ऐसा समय जब फ़िल्में केवल मनोरंजन ही नहीं करती थीं, बल्कि नवस्वतंत्र राष्ट्र की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं से गहराई से जुड़ती भी थीं। 1947 में भारत को आज़ादी मिल चुकी थी और देश अपनी पहचान को फिर से गढ़ने तथा स्वतंत्रता के वादों और चुनौतियों से जूझने में लगा था। इस दौर के सिनेमा — विशेषकर हिंदी और बंगाली फ़िल्मों — ने इन आकांक्षाओं और आशंकाओं को प्रतिबिंबित किया। इस दशक में महान फ़िल्मकारों, अविस्मरणीय अभिनेताओं और कालजयी क्लासिक फ़िल्मों का उदय हुआ, और साथ ही उस चीज़ की रूपरेखा भी तय हुई जिसे आज हम भारतीय लोकप्रिय संस्कृति कहते हैं।

हिंदी फ़िल्म उद्योग में, जिसे बाद में "बॉलीवुड" नाम दिया गया, 1950 का दशक कथा-कहन, संगीत और अभिनय का एक सुनहरा अध्याय था। राज कपूर, गुरु दत्त और बिमल रॉय जैसे निर्देशकों ने सिनेमा को सामाजिक टिप्पणी के माध्यम के रूप में इस्तेमाल किया, साथ ही यह भी सुनिश्चित किया कि उनकी फ़िल्में आम जनता की पहुँच में बनी रहें। उदाहरण के लिए, राज कपूर की 'आवारा' (1951) न केवल भारत में, बल्कि सोवियत संघ और मध्य-पूर्व के कुछ हिस्सों में भी एक प्रतिष्ठित फ़िल्म बन गई। अपराध और नैतिकता के बीच फँसे एक भटके हुए नौजवान की कहानी उन दर्शकों के दिल को छू गई जो आधुनिकता और परंपरा के विरोधाभासों से जूझ रहे थे। इसका प्रसिद्ध स्वप्न-दृश्य (ड्रीम सीक्वेंस) और भावपूर्ण गीत कपूर की शैली के प्रतीक बन गए — नाटकीय, फिर भी गहरे मानवतावादी।

दूसरी ओर, गुरु दत्त ने ऐसी फ़िल्में बनाईं जिनमें कलाकार के अकेलेपन और समाज के पाखंड की पड़ताल की गई। उनकी 'प्यासा' (1957) भारतीय सिनेमा में एक मील का पत्थर है, जो भौतिकवादी दुनिया से अलग-थलग पड़े एक कवि के संघर्ष को दर्शाती है। दत्त की महारत काव्यात्मक दृश्यों को मर्मस्पर्शी संगीत के साथ पिरोने में थी, जिससे उनकी फ़िल्में एक साथ गीतात्मक और सामाजिक रूप से प्रासंगिक बन गईं। इसी तरह, बिमल रॉय की 'मदर इंडिया' (1957) एक मील का पत्थर बनी, जिसे अक्सर इतालवी नवयथार्थवाद के प्रति भारत का उत्तर माना जाता है। एक ग्रामीण माँ की कठिनाइयों को दर्शाती इस फ़िल्म में, जिसकी भूमिका नरगिस ने अविस्मरणीय ढंग से निभाई, गरीबों की दृढ़ता, त्याग और नैतिक बल का प्रतीक प्रस्तुत हुआ, साथ ही न्याय और राष्ट्रीय पहचान के विषयों की गूँज भी सुनाई दी। ये फ़िल्में स्वतंत्रता के बाद के भारत की मूल चिंताओं — गरीबी, न्याय, नैतिकता और राष्ट्र-निर्माण की चुनौतियों — की प्रतिनिधि थीं। बाद के दशकों के विशुद्ध पलायनवादी मनोरंजन के विपरीत, 1950 के दशक का हिंदी सिनेमा सामाजिक रूप से सचेत ऐसी कला रचने का गंभीर प्रयास था जो व्यापक दर्शक वर्ग को आकर्षित कर सके। मेलोड्रामा, संगीत और प्रतीकवाद का उपयोग ध्यान भटकाने के लिए नहीं, बल्कि एक विविध और काफ़ी हद तक निरक्षर आबादी तक जटिल मुद्दे पहुँचाने के औज़ार के रूप में किया गया।

1950 के दशक में बॉलीवुड में "स्टार सिस्टम" भी सुदृढ़ हुआ। दिलीप कुमार, देव आनंद और राज कपूर जैसे अभिनेता सांस्कृतिक प्रतीक बन गए; उनके परदे के व्यक्तित्व ने न केवल फ़ैशन और शैली को, बल्कि प्रेम, त्रासदी और वीरता की लोकप्रिय धारणाओं को भी प्रभावित किया। दिलीप कुमार, जिन्हें अक्सर "ट्रेजेडी किंग" कहा जाता है, असफल प्रेमियों और सामाजिक विद्रोहियों के संवेदनशील चित्रण के लिए मशहूर हुए। देव आनंद ने अपने शहरी आकर्षण और हल्की-फुल्की परदे की उपस्थिति से आधुनिक भारतीय पुरुष का प्रतिनिधित्व किया। नरगिस, मधुबाला और मीना कुमारी जैसी अभिनेत्रियाँ भी उतनी ही प्रभावशाली थीं, उनके सौंदर्य और न्यात्यकला एवं सिनेमा में नारित्व के चित्रण हेतु सराहा गया।

इस दौरान सिनेमा हॉलों के विस्तार ने बॉलीवुड की सांस्कृतिक पहुँच को कई गुना बढ़ा दिया। फ़िल्में सस्ते मनोरंजन का प्रमुख रूप बन गईं, जिन्होंने वर्ग और जाति की सीमाओं के पार लोगों को आकर्षित किया। राज्य ने भी सिनेमा की क्षमता को राष्ट्र-निर्माण के एक साधन के रूप में पहचाना। फ़िल्म्स डिवीज़न ऑफ़ इंडिया ने वृत्तचित्र और न्यूज़रील बनाईं, जो फ़ीचर फ़िल्मों से पहले सिनेमाघरों में दिखाई जाती थीं और राष्ट्रीय एकता, स्वास्थ्य, शिक्षा तथा विकास के संदेश फैलाती थीं। इस प्रकार सिनेमा समाज का दर्पण भी बना और सामाजिक शिक्षण का साधन भी।

जहाँ बॉलीवुड राष्ट्रीय कल्पना पर छाया रहा, वहीं 1950 का दशक बंगाली सिनेमा का भी स्वर्ण युग था, जिसे भारतीय सिनेमा के बौद्धिक और कलात्मक क्षेत्र में असमान रूप से बड़ा प्रतिनिधित्व प्राप्त था। अपनी समृद्ध साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपराओं के साथ बंगाल ने उस समय के कुछ सबसे नवाचारी फ़िल्मकार दिए।

इनमें अग्रणी थे सत्यजित राय, जिनकी फ़िल्मों ने भारतीय सिनेमा को अभूतपूर्व वैश्विक पहचान दिलाई। अपनी प्रसिद्ध 'अपू त्रयी' के पहले भाग 'पथेर पांचाली' (1955) से शुरुआत करते हुए राय ने ग्रामीण बंगाल को ऐसे यथार्थवाद और मानवीयता के साथ चित्रित किया जो भारतीय सिनेमा में पहले कभी नहीं देखा गया था। यह त्रयी — 'पथेर पांचाली' (1955), 'अपराजितो' (1956) और 'अपुर संसार' (*द वर्ल्ड ऑफ़ अपू,* 1959) — अपू की बचपन से वयस्कता तक की यात्रा को समेटती है और गरीबी, आकांक्षा, क्षति तथा दृढ़ता जैसे सार्वभौमिक विषयों को प्रस्तुत करती है। इन फ़िल्मों ने सरलता को गहन भावनात्मक गहराई के साथ जोड़ा और आज इन्हें नियमित रूप से अब तक की महानतम फ़िल्मों में गिना जाता है।

मृणाल सेन और ऋत्विक घटक जैसे अन्य बंगाली फ़िल्मकारों ने भी भारत के समानांतर सिनेमा आंदोलन को आकार देने में अग्रणी भूमिका निभाई। मृणाल सेन ने फ़िल्म के माध्यम से सामाजिक असमानताओं और राजनीतिक उत्पीड़न की आलोचना की, जबकि ऋत्विक घटक की 'मेघे ढाका तारा' (1960) और 'अजांत्रिक' (1958) रूप और विषय-वस्तु के साहसिक प्रयोग के कारण आज भी क्लासिक मानी जाती हैं। बिमल रॉय, यद्यपि बाद में बॉलीवुड से जुड़े माने गए, वे भी इसी परिवेश से थे और अपने साथ बंगाली यथार्थवाद की संवेदनशीलता हिंदी सिनेमा में ले आए।

बंगाली फ़िल्म उद्योग ने 'नागरिक' (1952), 'जलसाघर' (1958), 'नील आकाशेर नीचे' (1959) और 'देवी' (1960) जैसी क्लासिक फ़िल्में भी दीं, जिनमें से प्रत्येक ने समाज, आध्यात्मिकता और मानवीय संघर्ष के अलग-अलग पहलुओं की पड़ताल की। मुख्यधारा के बॉलीवुड के विपरीत, जो मेलोड्रामा और भव्यता पर बहुत अधिक निर्भर था, बंगाली सिनेमा प्रायः साहित्य, रंगमंच और ललित कलाओं से प्रेरणा लेते हुए यथार्थवाद को कलात्मक प्रयोग के साथ मिलाने का प्रयास करता था।

बॉलीवुड के सितारों के समानांतर, बंगाली सिनेमा के भी अपने सांस्कृतिक प्रतीक थे जिन्होंने भारतीय फ़िल्म इतिहास पर अमिट छाप छोड़ी। उत्तम कुमार, जिन्हें व्यापक रूप से सबसे प्रसिद्ध बंगाली अभिनेता माना जाता है, 1950 के दशक में एक किंवदंती बन गए। सुचित्रा सेन के साथ उनकी परदे की जोड़ी

इतनी लोकप्रिय थी कि वे "द इटरनल पेयर" (शाश्वत जोड़ी) के नाम से जाने गए और उन्होंने पूरी एक पीढ़ी के लिए रोमांटिक आदर्श गढ़े।

सौमित्र चटर्जी, जिन्होंने सत्यजित राय की 'अपुर संसार' से पदार्पण किया, बंगाली सिनेमा की एक और विराट हस्ती बने। राय के लगातार सहयोगी रहे चटर्जी ने 'सोनार केल्ला' (1974) और 'जय बाबा फेलुनाथ' (1978) में प्रसिद्ध जासूस फेलूदा सहित कई यादगार भूमिकाएँ निभाईं। 1960 के दशक में सितारे के रूप में उत्तम कुमार के साथ उनकी प्रतिद्वंद्विता बंगाली सिनेमा के इतिहास का एक रोचक अध्याय बन गई।

शर्मिला टैगोर जैसी अभिनेत्रियाँ भी इसी दौर में प्रसिद्ध हुईं। राय की 'द वर्ल्ड ऑफ़ अपू' से पदार्पण करने वाली शर्मिला ने बंगाली सिनेमा और बॉलीवुड दोनों में सफलता हासिल की और क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय सितारा-हैसियत के बीच सेतु का काम किया।

1950 का दशक उस संगीत के लिए भी उल्लेखनीय था जिसने भारतीय सिनेमा को परिभाषित किया। बॉलीवुड में लता मंगेशकर, मोहम्मद रफ़ी, मुकेश, तलत महमूद और किशोर कुमार जैसे पार्श्वगायकों ने ऐसे गीत रचे जो आज भी गूँजते हैं। गीतकारों, संगीतकारों और गायकों के सहयोग ने फ़िल्म संगीत को भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने का अभिन्न अंग बना दिया।

बंगाली सिनेमा की भी समृद्ध संगीत परंपरा थी, जिसे रायचंद बोराल, पंकज मल्लिक और के.सी. डे जैसे अग्रदूतों ने गढ़ा, जो सभी कलकत्ता के प्रतिष्ठित न्यू थिएटर्स से जुड़े थे। हेमंत मुखर्जी, मन्ना डे, श्यामल मित्र, संध्या मुखोपाध्याय और किशोर कुमार जैसे पार्श्वगायकों ने ऐसे अमर गीत दिए जो आज भी बंगाली घरों में संजोकर रखे जाते हैं। बंगाली सिनेमा में संगीत प्रायः कविता और साहित्य से गहराई से जुड़ा था, जो इस क्षेत्र की बौद्धिक परंपराओं को प्रतिबिंबित करता था।

इस प्रकार 1950 का दशक ऐसे दशक के रूप में उभरता है जब भारतीय सिनेमा मनोरंजक भी था और ज्ञानवर्धक भी, क्षेत्रीय भी था और राष्ट्रीय भी, लोकप्रिय भी था और गहन भी। बॉलीवुड के स्वर्ण युग ने ऐसी फ़िल्में दीं जो स्वतंत्रता-पश्चात की वास्तविकताओं से जूझती थीं और मेलोड्रामा तथा संगीत को सशक्त सामाजिक संदेशों के साथ जोड़ती थीं। साथ ही, बंगाली सिनेमा ने सत्यजित राय, ऋत्विक घटक और मृणाल सेन जैसे दिग्गजों के नेतृत्व में कलात्मक नवाचार और यथार्थवाद का एक समानांतर मार्ग बनाया।

भारतीय सिनेमा की इन दो परंपराओं ने मिलकर न केवल बीसवीं सदी के मध्य के भारत की सांस्कृतिक कल्पना को आकार दिया, बल्कि भारतीय फ़िल्मों की वैश्विक पहचान की नींव भी रखी। राज कपूर, गुरु दत्त, बिमल रॉय, उत्तम कुमार, सत्यजित राय और अनेक अन्य की विरासत आज भी फ़िल्मकारों और दर्शकों को प्रेरित करती है, जिससे 1950 का दशक भारतीय सिनेमा के इतिहास के सबसे उल्लेखनीय दशकों में से एक के रूप में अंकित रहता है।

### 4.4.2 सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव

- **राष्ट्रीय एकीकरण:** बॉलीवुड फ़िल्मों ने भाषाई और सांस्कृतिक एकता को बढ़ावा दिया, जिसमें हिंदी विभिन्न क्षेत्रों के बीच संपर्क-भाषा का काम करती थी।
- **सांस्कृतिक प्रतिबिंब और निर्माण:** फ़िल्में प्रायः उस समाज को प्रतिबिंबित करती हैं जिसमें वे बनती हैं, और सामाजिक मूल्यों, सांस्कृतिक मानदंडों तथा तत्कालीन युग-चेतना (zeitgeist) को चित्रित करती हैं। साथ ही, वे नए विचार प्रस्तुत करके, प्रवृत्तियों को प्रभावित करके और मौजूदा मान्यताओं को सुदृढ़ या चुनौती देकर संस्कृति को आकार भी देती हैं।

- **सामाजिक जागरूकता और सहानुभूति:** फ़िल्मों में सामाजिक मुद्दों को सार्वजनिक चेतना के केंद्र में लाने की शक्ति होती है, और कभी-कभी वे वह कर दिखाती हैं जो पारंपरिक सक्रियतावाद के लिए कठिन होता है। रोचक कथानकों के माध्यम से वास्तविक जीवन के संघर्षों को दिखाकर फ़िल्में सहानुभूति जगाती हैं और महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूकता पैदा करती हैं।
- **व्यक्तिगत व्यवहार पर प्रभाव:** सांस्कृतिक और सामाजिक प्रभाव से परे, फ़िल्म का व्यक्तियों के व्यवहार, दृष्टिकोण और निर्णय-क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। फ़िल्में लोगों को प्रेरित कर सकती हैं, उनकी भावनात्मक अवस्थाओं को प्रभावित कर सकती हैं, या कुछ मुद्दों पर उनके विचार बदल सकती हैं।
- **राजनीतिक प्रभाव:** दशकों से फ़िल्म का उपयोग राजनीतिक अभिव्यक्ति और प्रचार के साधन के रूप में होता आया है। सरकारें, सामाजिक आंदोलन और कार्यकर्ता विशिष्ट विचारधाराओं को बढ़ावा देने या राजनीतिक मुद्दों की ओर ध्यान दिलाने के लिए सिनेमा का उपयोग करते हैं।
- **आर्थिक प्रभाव:** फ़िल्म एक प्रमुख आर्थिक प्रेरक भी है, जो टिकट बिक्री, रोज़गार, पर्यटन और सांस्कृतिक आदान-प्रदान के माध्यम से वैश्विक अर्थव्यवस्था में अरबों डॉलर का योगदान देती है। फ़िल्म उद्योग न केवल निर्माण में रोज़गार पैदा करता है, बल्कि फ़िल्मांकित-स्थलों पर पर्यटन को भी बढ़ावा देता है।
- **नैतिक और सामाजिक संदेश:** फ़िल्मों ने प्रायः परिवार और समुदाय जैसे पारंपरिक मूल्यों को सुदृढ़ किया, साथ ही लैंगिक भूमिकाओं, वर्गीय असमानताओं और ग्रामीण-शहरी विभाजन जैसे मुद्दों को भी उठाया। उदाहरण के लिए, 'दो बीघा ज़मीन' (1953) ने किसानों की दुर्दशा को रेखांकित किया।
- **सांस्कृतिक प्रभाव:** बॉलीवुड के संगीत, फ़ैशन और संवादों ने लोकप्रिय संस्कृति को आकार दिया; 'श्री 420' (1955) के गीत "मेरा जूता है जापानी" जैसे गीत राष्ट्रीय गौरव के गान बन गए।

### 4.4.3 व्यावसायीकरण और चुनौतियाँ

**कला पर लाभ को प्राथमिकता:** व्यावसायीकरण की मुख्य प्रेरक शक्ति लाभ है, जिसके कारण स्टूडियो ऐसे फ़ॉर्मूलों को वरीयता देते हैं जो बॉक्स-ऑफ़िस पर सफलता की गारंटी दें। इसके परिणामस्वरूप प्रायः सीक्वल, रीमेक और स्थापित फ़्रैंचाइज़ियों की बाढ़ आ जाती है।

**वैकल्पिक आवाज़ों का हाशियाकरण:** स्वतंत्र और गैर-व्यावसायिक फ़िल्में, जो जटिल या विशिष्ट सामाजिक मुद्दों को उठा सकती हैं, बड़े बजट की प्रस्तुतियों की विपणन-शक्ति से प्रतिस्पर्धा करने में संघर्ष करती हैं। यह प्रवृत्ति विविध दृष्टिकोणों और आख्यानों को हाशिये पर धकेल सकती है, जिससे सार्वजनिक क्षेत्र में प्रसारित होने वाली कहानियों और विचारों के प्रकार सीमित हो जाते हैं।

**पलायनवाद और मनोरंजन का प्रभुत्व:** व्यावसायिक सिनेमा प्रायः दर्शकों को ऐसा मेलोड्रामाई मनोरंजन देता है जो गहरी सामाजिक टिप्पणी की बजाय तमाशे को प्राथमिकता देता है। यह निष्क्रिय उपभोक्ता मानसिकता को प्रोत्साहित कर सकता है, जो वास्तविक दुनिया के मुद्दों से जुड़ने के बजाय उनसे ध्यान भटकाती है। कुछ मामलों में फ़िल्मों में सामाजिक मुद्दे शामिल होते हैं, पर प्रायः उन्हें भारी

नाटकीयता, गीत और नृत्य के पैकेज में लपेट दिया जाता है ताकि जन-आकर्षण बना रहे।

**सार्वजनिक स्थान से निजी उपभोग की ओर बदलाव:** शॉपिंग मॉल के भीतर मल्टीप्लेक्स के उदय ने सिनेमा के अनुभव को एक लोकतांत्रिक सार्वजनिक जमावड़े से बदलकर निजीकृत, उपभोग-उन्मुख अवकाश-गतिविधि बना दिया है। स्ट्रीमिंग प्लेटफ़ॉर्म के प्रसार ने इस बदलाव को और तेज़ किया है, जिससे फ़िल्म देखने का अनुभव व्यक्तिगत, घर के भीतर के दायरे में चला गया है और सिनेमा का साझा सामुदायिक पहलू क्षीण हो गया है।

**फ़ॉर्मूलाबद्ध और सरलीकृत आख्यान:** व्यापकतम संभव दर्शक वर्ग की "न्यूनतम साझा रुचि" को संतुष्ट करने के प्रयास में व्यावसायिक फ़िल्में जटिल विषयों को सरल बना सकती हैं।

1970 के दशक तक बॉलीवुड अधिक व्यावसायिक हो गया, और एक्शन फ़िल्में तथा बहु-सितारा तमाशे उद्योग पर हावी हो गए। "एंग्री यंग मैन" का आदर्श-रूप, जिसका प्रतिनिधित्व 'ज़ंजीर' (1973) और 'शोले' (1975) जैसी फ़िल्मों में अमिताभ बच्चन ने किया, भ्रष्टाचार और असमानता के प्रति जन-आक्रोश को प्रतिबिंबित करता था। फिर भी, इस बदलाव ने प्रायः सामाजिक आलोचना की तुलना में मनोरंजन को प्राथमिकता दी, जिससे पलायनवाद के आरोप लगे।

चुनौतियों में राज्य की सेंसरशिप शामिल थी, जिसने राजनीतिक सामग्री को सीमित किया, और उद्योग की फ़ॉर्मूलाबद्ध कथानकों पर निर्भरता, जिसने नवाचार को सीमित किया। 1980 के दशक में वीडियो पाइरेसी के उदय ने बॉलीवुड के वर्चस्व के लिए और खतरा पैदा किया, यद्यपि वह सार्वजनिक क्षेत्र में एक शक्तिशाली ताक़त बना रहा।

## 4.5 समानांतर सिनेमा: एक आलोचनात्मक स्वर

1940 के दशक के उत्तरार्द्ध और 1950 के दशक में भारतीय फ़िल्म-निर्माण में एक विशिष्ट आंदोलन के रूप में उभरा। मुख्यधारा के बॉलीवुड के विपरीत, जिसकी पहचान गीत-नृत्य के दृश्यों, मेलोड्रामा और फ़ॉर्मूलाबद्ध कथानकों से होती है, समानांतर सिनेमा का उद्देश्य सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर ध्यान केंद्रित करते हुए यथार्थवादी कहानियाँ प्रस्तुत करना है। यह इतालवी नवयथार्थवाद, फ्रेंच न्यू वेव और जापानी सिनेमा की परंपराओं से गहराई से प्रेरित है।

सामाजिक रूप से सचेत और सौंदर्य की दृष्टि से नवाचारी फ़िल्में प्रस्तुत कीं। फ़िल्म फ़ाइनेंस कॉर्पोरेशन (जो बाद में राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम, NFDC बना) के समर्थन से इसने मुख्यधारा के मानदंडों को चुनौती दी और सार्वजनिक क्षेत्र को समृद्ध किया।

### 4.5.1 उत्पत्ति और प्रमुख व्यक्तित्व

समानांतर सिनेमा की शुरुआत 1950 के दशक में हुई। इसका आरंभ बंगाल और बंगाली सिनेमा में हुआ, जहाँ फ़िल्मकारों ने समाज से जुड़े प्रासंगिक सामाजिक मुद्दों पर यथार्थवादी फ़िल्में बनाना शुरू किया। 1960 के दशक तक यह आंदोलन हिंदी सिनेमा या बंबई तक पहुँच गया। यह सिनेमा एक गैर-व्यावसायिक प्रकार का सिनेमा था, क्योंकि उसका उद्देश्य अधिक से अधिक व्यापार करना नहीं था। इसलिए इससे एक शब्द जुड़ गया — 'कला सिनेमा'। कला सिनेमा, समानांतर सिनेमा, वैकल्पिक सिनेमा — ये सभी शब्द लंबे समय से भारतीय न्यू वेव सिनेमा का वर्णन करने के लिए प्रयुक्त होते रहे हैं। समानांतर सिनेमा ने देश के दर्शकों को जगाया और अपने परिवेश पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया तथा उन्हें चेतना की ओर झकझोरा। इसने उस समय राष्ट्र के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवेश पर एक प्रकार की टिप्पणी प्रस्तुत की। उस समय बनी सभी फ़िल्मों में मुख्यधारा के सिनेमा से भिन्न एक विशिष्ट शैलीगत दृष्टिकोण साझा था। वे प्रयोगात्मक फ़िल्में थीं जिन्हें अधिक आर्थिक सफलता

नहीं मिली, क्योंकि उनमें से कई को दर्शकों ने बहुत अच्छी तरह स्वीकार नहीं किया। FTII और NFDC की स्थापना ने यथार्थवादी फ़िल्मों के निर्माण को प्रोत्साहित किया, जिन्हें सरकार ने सिनेमा के माध्यम से भारत की संस्कृति को प्रस्तुत करने के साधन के रूप में संरक्षण दिया। मध्य सिनेमा (Middle Cinema) एक और नाम था जो धीरे-धीरे समानांतर सिनेमा से जुड़ता गया, विशेषकर श्याम बेनेगल की फ़िल्मों के संदर्भ में।

प्रारंभिक समानांतर सिनेमा प्रायः दर्शकों के लिए पूरी तरह सराहने योग्य होने के लिहाज़ से बहुत अधिक यथार्थवादी और प्रयोगात्मक था। इसलिए धीरे-धीरे समानांतर सिनेमा विकसित होकर ऐसा सिनेमा बन गया जो मुख्यधारा के सिनेमा और दर्शकों की रुचि के लिए अत्यधिक यथार्थवादी समानांतर सिनेमा के बीच की जगह में स्थित था। इसीलिए इसे परिभाषित करने के लिए मध्य सिनेमा शब्द प्रयोग किया गया। समानांतर सिनेमा का यह रूप दर्शकों के बीच जगह बनाने लगा और गति पकड़ते हुए राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रशंसा प्राप्त करने लगा। इस आंदोलन ने हिंदी फ़िल्म उद्योग को ओम पुरी, शबाना आज़मी, स्मिता पाटिल, नसीरुद्दीन शाह, दीप्ति नवल, फ़ारूख़ शेख़, अमोल पालेकर और पंकज कपूर जैसे अनेक अद्‌भुत अभिनय-प्रतिभाशाली कलाकार भी दिए।

### 4.5.2 विषय-वस्तु और सौंदर्यशास्त्र

- **यथार्थवाद:** समानांतर फ़िल्मों ने वृत्तचित्र जैसी शैली अपनाई, जिसमें दैनिक जीवन को दर्शाने के लिए प्राकृतिक परिवेश और गैर-पेशेवर अभिनेताओं का उपयोग किया गया। उदाहरण के लिए, श्याम बेनेगल की 'अंकुर' (1974) ने ग्रामीण सत्ता-समीकरणों को चित्रित किया।
- **सामाजिक आलोचना:** फ़िल्मों ने जाति, लिंग और आर्थिक असमानता जैसे ज्वलंत मुद्दों को उठाया। 500,000 किसानों द्वारा वित्तपोषित 'मंथन' (1976) ने सहकारी डेयरी आंदोलन को रेखांकित किया।
- **साहित्यिक संबंध:** समानांतर सिनेमा ने हिंदी साहित्य से, विशेषकर *नयी कहानी* आंदोलन से, प्रेरणा ली; विजयदान देथा और प्रेमचंद जैसे लेखकों की कहानियों को फ़िल्मों में रूपांतरित किया गया।
- **कथा-शैली:** कथानक प्रायः सीधे-सरल और धीमी गति वाले होते हैं, जिससे दर्शक पात्रों और उनके परिवेश से गहराई से जुड़ पाते हैं।
- **चरित्र-विकास:** पात्र जटिल और बहुआयामी होते हैं, जो प्रायः सामाजिक-आर्थिक मुद्दों, व्यक्तिगत दुविधाओं और नैतिक संघर्षों से जूझते हैं।
- **परिवेश:** फ़िल्मों की शूटिंग प्रायः वास्तविक स्थानों पर होती है, जो ग्रामीण गाँवों, शहरी झुग्गियों या मध्यवर्गीय घरों के प्रामाणिक वातावरण को पकड़ती है।
- **प्राकृतिक प्रकाश:** फ़िल्मकार प्रायः अधिक सहज और कम चमकदार रूप पाने के लिए प्राकृतिक प्रकाश का प्रयोग करते हैं।
- **न्यूनतम कला-निर्देशन:** सेट और वेशभूषा सरल रखी जाती हैं और कथा के परिवेश के प्रति सच्ची रहती हैं।
- **छायांकन:** लंबे शॉट, हैंडहेल्ड कैमरा-कार्य और स्थिर शॉट पर ज़ोर होता है, जो तल्लीन करने वाले अनुभव में योगदान देते हैं।

- **सामाजिक असमानता:** अनेक फ़िल्में गरीबी, जातिगत भेदभाव और लैंगिक असमानता के मुद्दों को उठाती हैं।
- **राजनीतिक मुद्दे:** फ़िल्में प्रायः सरकारी नीतियों और सामाजिक संरचनाओं की आलोचना करती हैं।
- **मानवीय संबंध:** मानवीय भावनाओं और संबंधों की जटिलताएँ केंद्रीय ध्यान का विषय होती हैं।
- **आलोचनात्मक प्रशंसा:** समानांतर सिनेमा ने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण आलोचनात्मक प्रशंसा अर्जित की है। इसे कान, बर्लिन और वेनिस जैसे प्रमुख फ़िल्म समारोहों में मान्यता मिली है, जिसने वैश्विक मंच पर भारतीय सिनेमा को ऊँचा उठाने में मदद की।
- **प्रभाव:** इस आंदोलन ने फ़िल्मकारों की एक पूरी पीढ़ी को प्रभावित किया है जो आज भी इसके सौंदर्यशास्त्र और विषयगत चिंताओं से प्रेरणा लेती है। मणि कौल, कुमार शहानी और हाल के समय में अनुराग कश्यप तथा दिबाकर बनर्जी जैसे निर्देशक समानांतर सिनेमा की विरासत के ऋणी हैं।
- **सांस्कृतिक प्रभाव:** समानांतर सिनेमा ने भारत में सामाजिक और राजनीतिक मुद्दों पर विमर्श को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इसने हाशिये की आवाज़ों को मंच दिया और रोज़मर्रा के जीवन के संघर्षों की ओर ध्यान आकृष्ट किया।

### 4.5.3 1990 के दशक में पतन

समानांतर सिनेमा विशेष रूप से 70 और 80 के दशक में बहुत अच्छा कर रहा था। किंतु कुछ आर्थिक कारकों ने समानांतर सिनेमा के पतन को जन्म दिया। जब तक भारत 1990 के दशक में पहुँचा, भारतीय अर्थव्यवस्था तीव्र आर्थिक दबाव में थी, इतनी कि भारत विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संगठनों से लिए गए कई ऋणों में चूक की कगार पर पहुँच गया था। 1991 में भारत को IMF और विश्व बैंक ने संकट से उबारा, लेकिन इस सबके बाद सरकार को कुछ बड़े आर्थिक सुधार भी लागू करने पड़े, जिनमें से एक सबसे महत्वपूर्ण भारतीय अर्थव्यवस्था का उदारीकरण था। उदारीकरण के बाद निर्माण-लागत में वृद्धि हुई। भारत में समानांतर सिनेमा के लिए प्रदर्शन-स्थलों की भी कमी थी।

एक अन्य कारण यह था कि टेलीविज़न इस उद्योग में आ गया था और 1990 के दशक तक उसने बहुत लोकप्रियता हासिल कर ली थी। ज़ी टीवी और स्टार टीवी जैसे अंतर्राष्ट्रीय खिलाड़ी भी इस परिदृश्य में आ गए, और निश्चय ही धन की सामान्य कमी थी क्योंकि फ़िल्में बनाने की लागत बढ़ गई थी। उदारीकरण से विदेशी निवेशकों ने फ़िल्म-निर्माण में निवेश किया, जिससे फ़िल्म एक विशाल कारोबार बन गई। निवेशकों की रुचि केवल उन फ़िल्मों में थी जिनकी सफलता निश्चित हो। समानांतर सिनेमा ऐसा नहीं लगता था जिससे निश्चित लाभ मिलेगा। इसलिए समानांतर सिनेमा के लिए वित्तपोषण की कमी रही। समानांतर सिनेमा को प्रभावित करने वाली एक और चीज़ फ़िल्मों की अनधिकृत या अवैध नकल (पाइरेसी) थी।

समानांतर सिनेमा उन फ़िल्मों से बना है जो किसी समाज की सामाजिक वास्तविकता में जड़ें जमाए होती हैं। इस प्रकार का सिनेमा भारत में फ़िल्म-निर्माण की शुरुआत से ही और दशकों तक मौजूद रहा था। लेकिन सामाजिक यथार्थवादी फ़िल्म अपने चरम पर 70 और 80 के दशक में पहुँची, जब समानांतर सिनेमा के आंदोलन ने वास्तव में ज़ोर पकड़ा। 1990 के दशक में देश की आर्थिक स्थिति ने इस प्रकार

के फ़िल्म-निर्माण को गंभीर आघात पहुँचाया। फिर भी, 2000 के दशक में, नई सहस्राब्दी के साथ, समानांतर सिनेमा का धीरे-धीरे पुनरुद्धार हुआ।

इसके सबसे प्रबल कारणों में से एक मल्टीप्लेक्स का आगमन था। मल्टीप्लेक्स एकल-स्क्रीन सिनेमाघरों की जगह लेने लगे थे। एकल-स्क्रीन सिनेमाघरों में एक ही स्क्रीन होती थी, इसलिए वे किसी निश्चित संख्या के दिनों या हफ़्तों तक एक समय में केवल एक ही फ़िल्म दिखा सकते थे। लेकिन मल्टीप्लेक्स के आने से फ़िल्मों के प्रदर्शन के लिए एक से अधिक स्क्रीन उपलब्ध हुईं। इसका अर्थ था कि लोगों को फ़िल्में दिखाने के लिए अधिक स्थान उपलब्ध थे। इसलिए अब मध्यम बजट की फ़िल्मों के लिए भी स्क्रीन उपलब्ध थीं। ये मध्यम बजट की फ़िल्में सबसे अधिक लाभ देने वाली नहीं थीं, इसलिए एकल-स्क्रीन सिनेमाघर उन्हें नहीं उठाते थे। अधिक स्क्रीन की उपलब्धता के साथ मल्टीप्लेक्स अब निश्चित मुनाफ़े वाली बड़े बजट की फ़िल्मों के साथ-साथ कुछ मध्यम बजट की फ़िल्में भी चला सकते थे। इस प्रकार मध्यम बजट की वे फ़िल्में, जो कुछ हद तक प्रयोगात्मक और लीक से हटकर होती हैं, उन्हें भी स्क्रीन आवंटित होने लगी। इस स्थिति में इसका उलटा भी सच है, क्योंकि अधिक स्क्रीन की उपलब्धता ने फ़िल्मकारों को अपने फ़िल्म-निर्माण में प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित किया।

इससे एक नए प्रकार के सिनेमा का जन्म हुआ, जिसे कभी-कभी 'मल्टीप्लेक्स सिनेमा' कहा जाता है। 'खोसला का घोसला' (2006), 'पीपली लाइव' (2010), 'देव.डी' (2009), 'बीइंग साइरस' (2005) जैसी फ़िल्में सामने आने लगीं। ये ठीक वैसी समानांतर फ़िल्में नहीं थीं जैसी 1970 के दशक की फ़िल्में थीं, पर उसी प्रकार के सामाजिक यथार्थवाद पर आधारित थीं और दोनों का कुछ-कुछ मिश्रण थीं; इनमें समानांतर सिनेमा के तत्व थे, पर मुख्यधारा के सिनेमा की विशेषताएँ भी थीं। सामान्यतः मल्टीप्लेक्स फ़िल्में स्वतंत्र फ़िल्में होती हैं और कम या मध्यम बजट के वित्तपोषण से बनती हैं। ध्यान इस पर अधिक होता है कि कथ्य क्या है और उसे कैसे कहा जा रहा है। इन मल्टीप्लेक्स फ़िल्मों को समानांतर फ़िल्में कहा जा सकता है, पर एक नए अवतार में, जो यथार्थवाद में निहित हैं किंतु संशोधित मुख्यधारा की सिनेमाई युक्तियों के साथ। फ़िल्म में गीत और नृत्य हो सकते हैं, लेकिन उनका एक कारण होगा, जैसे निर्देशक द्वारा किसी विशिष्ट विवरण की ओर ध्यान आकृष्ट करना।

मल्टीप्लेक्स सिनेमा से जुड़े कुछ अभिनेताओं में मनोज बाजपेयी, बोमन ईरानी, अभय देओल, कल्कि कोएचलिन, कोंकणा सेन और राजकुमार राव आदि शामिल हैं। समकालीन समय में इस प्रकार का सिनेमा बहुत अच्छा कर रहा है, क्योंकि बड़ी संख्या में दर्शक इन फ़िल्मों को देखने सिनेमाघरों में जा रहे हैं। मुख्यधारा के अभिनेता और निर्देशक भी बड़े पैमाने पर इस प्रकार के सिनेमा में हाथ आज़मा रहे हैं। उदाहरण के लिए, 'बीइंग साइरस' में सैफ़ अली खान थे, जिन्हें मुख्यधारा का अभिनेता माना जाता है। समानांतर सिनेमा इस समय यहीं है, जहाँ मुख्यधारा के सिनेमा के साथ प्रयोग हो रहे हैं और वह समानांतर सिनेमा की विशेषताएँ भी अपना रहा है।

## 4.6 सार्वजनिक क्षेत्र में कला और साहित्य

कला और साहित्य भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के महत्वपूर्ण घटक थे, जिन्होंने बौद्धिक बहस, रचनात्मक अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक चिंतन के लिए स्थान प्रदान किए।

### 4.6.1 साहित्य

1950 से 1990 के दशकों में आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय हुआ, जिसमें *नयी कहानी* और *साठोत्तरी* कविता जैसे आंदोलनों ने स्वतंत्रता-पश्चात मोहभंग को संबोधित किया। प्रेमचंद, अमृता प्रीतम, महाश्वेता देवी और निर्मल वर्मा जैसे लेखकों ने विभाजन, लिंग और सामाजिक न्याय के विषयों की पड़ताल

की। उदाहरण के लिए, महाश्वेता देवी की 'द्रौपदी' (1978) ने राज्य-हिंसा और आदिवासी उत्पीड़न की आलोचना की।

'धर्मयुग', 'सारिका' और 'हंस' जैसी साहित्यिक पत्रिकाएँ सार्वजनिक क्षेत्र के केंद्र में थीं, जो कहानियाँ, निबंध और कविताएँ प्रकाशित करती थीं और बहस को बढ़ावा देती थीं। 1954 में स्थापित साहित्य अकादेमी ने क्षेत्रीय साहित्यों को प्रोत्साहित किया और भाषाओं के बीच रचनाओं का अनुवाद करके एक राष्ट्रीय साहित्यिक संस्कृति का निर्माण किया।

### 4.6.2 कला

इस काल की भारतीय कला ने परंपरा और आधुनिकता के संश्लेषण को प्रतिबिंबित किया। 1947 में एम.एफ़. हुसैन, एस.एच. रज़ा और एफ़.एन. सूज़ा जैसे कलाकारों द्वारा स्थापित प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप ने भारतीय विषयों को आधुनिकतावादी तकनीकों के साथ मिलाया और औपनिवेशिक सौंदर्यशास्त्र को चुनौती दी। उदाहरण के लिए, हुसैन के चित्रों ने भारतीय पौराणिक कथाओं और ग्रामीण जीवन से प्रेरणा ली, जबकि रज़ा ने अमूर्त रूपों की खोज की।

1954 में स्थापित ललित कला अकादेमी ने प्रदर्शनियों और पुरस्कारों के माध्यम से कलात्मक नवाचार को बढ़ावा दिया। भूपेन खाखर जैसी हस्तियों के नेतृत्व वाले बड़ौदा स्कूल जैसे क्षेत्रीय कला आंदोलनों ने सांस्कृतिक परिदृश्य को समृद्ध किया। गैलरियों और संग्रहालयों जैसे सार्वजनिक कला-स्थल बौद्धिक आदान-प्रदान के मंच बन गए।

### 4.6.3 अंतर्संबंध

साहित्य और कला का सिनेमा के साथ संगम हुआ, जिससे एक समृद्ध सांस्कृतिक संवाद बना। उदाहरण के लिए, रवींद्रनाथ टैगोर की रचनाओं से प्रेरित सत्यजित राय की फ़िल्मों ने साहित्यिक गहराई को दृश्य कलात्मकता के साथ जोड़ा। इसी प्रकार, श्याम बेनेगल की 'अंकुर' ने विजयदान देथा की एक कहानी को रूपांतरित किया, जिससे साहित्य और सिनेमा के बीच सेतु बना। इन अंतर्संबंधों ने अंतर-विषयक जुड़ाव को बढ़ावा देकर सार्वजनिक क्षेत्र को सुदृढ़ किया।

## 4.7 विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा

विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा में हुई प्रगति ने भारत की आधुनिक पहचान और सार्वजनिक क्षेत्र को आकार देने में निर्णायक भूमिका निभाई, जो प्रगति की नेहरूवादी दृष्टि के अनुरूप थी।

### 4.7.1 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

1969 में भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (ISRO) और 1942 में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद (CSIR) की स्थापना ने वैज्ञानिक उन्नति के प्रति भारत की प्रतिबद्धता को चिह्नित किया। एम.एस. स्वामीनाथन जैसे वैज्ञानिकों के नेतृत्व में हरित क्रांति (1960–1970 के दशक) ने अधिक उपज वाली फ़सलों के माध्यम से कृषि का रूपांतरण किया और खाद्य सुरक्षा की समस्या को संबोधित किया। 1974 के पोखरण परीक्षण में परिणत भारत के परमाणु कार्यक्रम और आर्यभट्ट (1975) जैसे ISRO के उपग्रह प्रक्षेपणों ने तकनीकी महत्वाकांक्षा का संकेत दिया।

टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फ़ंडामेंटल रिसर्च (TIFR) जैसे वैज्ञानिक संस्थानों ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण (scientific temper) को बढ़ावा दिया और जन-अभियानों के माध्यम से अंधविश्वास का मुकाबला किया। इन उपलब्धियों ने तर्कसंगतता और प्रगति को प्रोत्साहित करके सार्वजनिक विमर्श को आकार दिया।

## शिक्षा में विज्ञान और प्रौद्योगिकी के लाभ

- **वैयक्तिकृत शिक्षण:** प्रौद्योगिकी वैयक्तिकृत शिक्षण मंचों के माध्यम से हर विद्यार्थी की ज़रूरतों के अनुरूप ढल सकती है, और "सबके लिए एक जैसा" वाले दृष्टिकोण से आगे बढ़ सकती है।
- **बढ़ी हुई सहभागिता:** इंटरैक्टिव उपकरण, सिमुलेशन और रीयल-टाइम डेटा विश्लेषण सीखने को अधिक आकर्षक और व्यावहारिक बनाते हैं।
- **विशाल संसाधन:** विद्यार्थियों को पारंपरिक पाठ्यपुस्तकों से कहीं आगे की सूचना और विविध शैक्षिक संसाधनों तक तुरंत पहुँच मिलती है।
- **बेहतर दक्षता:** प्रौद्योगिकी शिक्षकों के प्रशासनिक कार्यों को सरल बना सकती है और विद्यार्थियों की प्रगति पर रीयल-टाइम फ़ीडबैक दे सकती है।
- **वैश्विक संपर्क:** विद्यार्थी विश्व भर के साथियों और विशेषज्ञों से जुड़कर व्यापक दृष्टिकोण पा सकते हैं।
- **कौशल विकास:** प्रौद्योगिकी को शामिल करने से आलोचनात्मक चिंतन, समस्या-समाधान और डिजिटल साक्षरता को बढ़ावा मिलता है, जो विद्यार्थियों को डिजिटल युग के लिए तैयार करता है।

## चुनौतियाँ और विचारणीय बिंदु

- **पहुँच और समता:** जिनके पास उपकरणों और भरोसेमंद इंटरनेट की पहुँच नहीं है, उनके लिए प्रौद्योगिकी के लाभ सीमित हैं।
- **क्रियान्वयन की लागत:** बड़े पैमाने पर प्रौद्योगिकी को लागू करने और बनाए रखने का वित्तीय दायित्व काफ़ी बड़ा हो सकता है और प्रायः अनदेखा रह जाता है।
- **अति-निर्भरता और मानवीय संवाद:** प्रौद्योगिकी को शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच के महत्वपूर्ण मानवीय संवाद का सहायक साधन होना चाहिए, उसका विकल्प नहीं।
- **पाठ्यक्रम का पिछड़ना:** प्रौद्योगिकी प्रायः शैक्षिक सामग्री से तेज़ी से आगे बढ़ती है, जिससे पाठ्यक्रम को अद्यतन रखने के लिए रचनात्मक तरीकों की आवश्यकता होती है।
- **आलोचनात्मक उपयोग:** यह प्रश्न उठाना महत्वपूर्ण है कि प्रौद्योगिकी का उपयोग किन शर्तों पर हो रहा है, ताकि वह उपयुक्त, समावेशी और टिकाऊ हो। शिक्षार्थियों को यह भी सिखाया जाना चाहिए कि वे अपने सीखने को बेहतर बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का चयनात्मक और आलोचनात्मक उपयोग करें।

### 4.7.2 शिक्षा

IITs (1951 से आरंभ) और भारतीय प्रबंधन संस्थान (IIMs) जैसी संस्थाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा के विस्तार ने एक पेशेवर वर्ग तैयार किया जिसने सार्वजनिक विमर्श में योगदान दिया। 1956 में स्थापित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) ने उच्च शिक्षा का मानकीकरण किया, जबकि IGNOU (1985) ने मुक्त और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से सीखने का लोकतंत्रीकरण किया। इन पहलों ने महिलाओं और ग्रामीण समुदायों सहित विविध आबादी को सार्वजनिक क्षेत्र में भाग लेने के लिए सशक्त बनाया।

### 4.7.3 सार्वजनिक क्षेत्र पर प्रभाव

- **वैज्ञानिक दृष्टिकोण:** भारत ज्ञान विज्ञान जत्था जैसे अभियानों ने वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा दिया और पारंपरिक मान्यताओं को चुनौती दी।
- **शिक्षा द्वारा सशक्तिकरण:** शिक्षा ने सामाजिक गतिशीलता को संभव बनाया, और स्नातक नीति तथा विकास पर सार्वजनिक बहसों में योगदान देने लगे।
- **प्रौद्योगिकी और मीडिया:** 1980 के दशक में टेलीविज़न के आगमन और 'भारत एक खोज' (1988) जैसे कार्यक्रमों ने ऐतिहासिक और वैज्ञानिक आख्यानों को जन-जन तक पहुँचाया और सार्वजनिक क्षेत्र को समृद्ध किया।

## 4.8 विभिन्न क्षेत्रों का पारस्परिक संबंध

1950 से 1990 के बीच भारत का सार्वजनिक क्षेत्र एक गतिशील स्थान था जहाँ सिनेमा, कला, साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा आपस में मिलते थे। लोकप्रिय सिनेमा ने भावनात्मक अनुनाद प्रदान किया और राष्ट्रीय एकता तथा नैतिक मूल्यों के आख्यानों के साथ जन-दर्शकों को आकर्षित किया। समानांतर सिनेमा ने सामाजिक मुद्दों पर आलोचनात्मक चिंतन प्रस्तुत किया और मुख्यधारा के मानदंडों को चुनौती दी। साहित्य और कला ने बौद्धिक बहस को बढ़ावा दिया, जबकि विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा ने आधुनिकीकरण को गति दी। उदाहरण के लिए, जवाहरलाल नेहरू की 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' पर आधारित 'भारत एक खोज' ने ऐतिहासिक आख्यान, साहित्य और मीडिया को मिलाकर जनता को शिक्षित और संलग्न किया।

ये क्षेत्र परस्पर जुड़े हुए थे: साहित्यिक रचनाओं ने समानांतर सिनेमा को प्रेरित किया, वैज्ञानिक प्रगति ने शैक्षिक पाठ्यक्रमों को प्रभावित किया, और कला ने सिनेमाई सौंदर्यशास्त्र को आकार दिया। साथ मिलकर उन्होंने परंपरा और आधुनिकता की जटिलताओं के बीच राह निकाली और एक बहुलवादी सार्वजनिक क्षेत्र रचा जो भारत की विविध आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करता था।

## 4.9 चुनौतियाँ और सीमाएँ

- **पहुँच और असमानता:** निरक्षरता, गरीबी और शहरी-ग्रामीण विभाजन ने सार्वजनिक क्षेत्र तक पहुँच को सीमित किया, जिससे हाशिये के समूह बाहर रह गए।
- **सेंसरशिप:** सिनेमा और मीडिया पर राज्य के नियंत्रण ने, विशेषकर राजनीतिक मुद्दों पर, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को सीमित किया।
- **व्यावसायीकरण:** व्यावसायिक सिनेमा और मीडिया के प्रभुत्व ने समानांतर सिनेमा और साहित्यिक पत्रिकाओं जैसी वैकल्पिक आवाज़ों को हाशिये पर धकेल दिया।
- **क्षेत्रीय असमानताएँ:** हिंदी-केंद्रित सार्वजनिक क्षेत्र प्रायः क्षेत्रीय आख्यानों पर हावी रहा, जिससे प्रतिनिधित्व में असंतुलन पैदा हुआ।

## 4.10 निष्कर्ष

1950 से 1990 तक भारत में नया सार्वजनिक क्षेत्र एक जीवंत और विवादित स्थान था, जिसे लोकप्रिय और समानांतर सिनेमा, कला, साहित्य, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और शिक्षा ने आकार दिया। इन क्षेत्रों ने भारत की स्वतंत्रता-पश्चात पहचान को अभिव्यक्त किया, परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन साधा और

सार्वजनिक विमर्श को बढ़ावा दिया। लोकप्रिय सिनेमा ने विविध दर्शकों को एकजुट किया, समानांतर सिनेमा ने सामाजिक असमानताओं की आलोचना की, साहित्य और कला ने बौद्धिक गहराई प्रदान की, और विज्ञान तथा शिक्षा ने प्रगति को गति दी। सेंसरशिप और असमानता जैसी चुनौतियों के बावजूद, सार्वजनिक क्षेत्र ने भारत के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास की नींव रखी, जिसने समकालीन बहसों और भविष्य की दिशाओं को प्रभावित किया।

## 4.11 बहुविकल्पीय प्रश्न (MCQs)

1. यूरगन हैबरमास द्वारा परिकल्पित सार्वजनिक क्षेत्र की प्राथमिक भूमिका क्या है?
   A) आर्थिक विकास
   B) तर्कसंगत-आलोचनात्मक बहस
   C) धार्मिक विमर्श
   D) राजनीतिक प्रचार

2. भारत में समानांतर सिनेमा के विकास में किस संस्था ने सहयोग दिया?
   A) फ़िल्म्स डिवीज़न ऑफ़ इंडिया
   B) राष्ट्रीय फ़िल्म विकास निगम
   C) साहित्य अकादेमी
   D) भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद

3. 1950 के दशक में बॉलीवुड के स्वर्ण युग की पहचान मानी जाने वाली फ़िल्म कौन-सी है?
   A) शोले
   B) मदर इंडिया
   C) भुवन शोम
   D) उसकी रोटी

4. 1970 के दशक में समानांतर सिनेमा का एक प्रमुख विषय क्या था?
   A) पलायनवादी मनोरंजन
   B) सामाजिक यथार्थवाद
   C) पौराणिक आख्यान
   D) एक्शन-एडवेंचर

5. 1960 और 1970 के दशकों में समानांतर सिनेमा को किस साहित्यिक आंदोलन ने प्रभावित किया?
   A) प्रगतिशील लेखक आंदोलन
   B) नयी कहानी
   C) छायावाद
   D) भक्ति कविता

6. प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स ग्रुप से कौन-सा कलाकार जुड़ा था?
   A) अमृता शेरगिल
   B) एम.एफ़. हुसैन
   C) जामिनी रॉय
   D) राजा रवि वर्मा

7. भारत में हरित क्रांति की एक प्रमुख उपलब्धि क्या थी?
   A) अंतरिक्ष अन्वेषण
   B) कृषि उत्पादकता
   C) परमाणु प्रौद्योगिकी
   D) शैक्षिक सुधार

8. मुक्त और दूरस्थ शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 1985 में कौन-सी संस्था स्थापित की गई?
   A) IIT
   B) IGNOU
   C) ISRO
   D) CSIR

9. श्याम बेनेगल की किस फ़िल्म ने ग्रामीण भारत में सहकारी आंदोलन को उठाया?
   A) अंकुर
   B) मंथन
   C) भुवन शोम
   D) सारा आकाश

10. 1950–1990 के दौरान भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के सामने एक प्रमुख चुनौती क्या थी?
   A) सांस्कृतिक विविधता का अभाव
   B) आर्थिक समृद्धि
   C) सेंसरशिप
   D) अत्यधिक शिक्षा

11. 1950 और 1960 के दशकों में हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र के केंद्र में कौन-सी पत्रिका थी?
   A) इंडिया टुडे
   B) धर्मयुग
   C) फ़िल्मफ़ेयर
   D) आउटलुक

12. समानांतर सिनेमा की फ़िल्म 'भुवन शोम' का निर्देशन किसने किया?
   A) मणि कौल
   B) मृणाल सेन
   C) बासु चटर्जी
   D) श्याम बेनेगल

13. 1970 के दशक की बॉलीवुड फ़िल्मों की एक प्रमुख विशेषता क्या थी?
    A) संगीत का न्यूनतम उपयोग
    B) व्यावसायीकरण
    C) वृत्तचित्र शैली
    D) क्षेत्रीय केंद्रितता

14. स्वतंत्रता-पश्चात भारत में कलात्मक नवाचार को किस संस्था ने बढ़ावा दिया?
    A) साहित्य अकादेमी
    B) ललित कला अकादेमी
    C) संगीत नाटक अकादेमी
    D) फ़िल्म्स डिवीज़न

15. सार्वजनिक क्षेत्र में नेहरूवादी दृष्टि का एक प्रमुख केंद्र बिंदु क्या था?
    A) धार्मिक पुनरुत्थानवाद
    B) वैज्ञानिक दृष्टिकोण
    C) सामंती परंपराएँ
    D) औपनिवेशिक नॉस्टैल्जिया

16. समानांतर सिनेमा में साहित्यिक रूपांतरण का उदाहरण कौन-सी फ़िल्म है?
    A) शोले
    B) अंकुर
    C) प्यासा
    D) दीवार

17. 1990 के दशक में समानांतर सिनेमा के पतन में किस कारक का योगदान था?
    A) राज्य के वित्तपोषण में वृद्धि
    B) निजी टेलीविज़न का उदय
    C) साहित्यिक पत्रिकाओं की वृद्धि
    D) बॉलीवुड का विस्तार

18. *नयी कहानी* आंदोलन से कौन-सा लेखक जुड़ा था?
    A) रवींद्रनाथ टैगोर
    B) प्रेमचंद
    C) निर्मल वर्मा
    D) सआदत हसन मंटो

19. 1980 के दशक के सार्वजनिक क्षेत्र में टेलीविज़न की एक प्रमुख भूमिका क्या थी?
    A) क्षेत्रीय सिनेमा को बढ़ावा देना
    B) ऐतिहासिक आख्यानों का प्रसार
    C) मुद्रण माध्यमों को समर्थन देना
    D) सार्वजनिक विमर्श को सीमित करना

20. भारत के अंतरिक्ष कार्यक्रम में कौन-सा संगठन सहायक रहा?

A) CSIR

B) ISRO

C) UGC

D) IIT

## 4.12 बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर (MCQs)

1. B
2. B
3. B
4. B
5. B
6. B
7. B
8. B
9. B
10. C
11. B
12. B
13. B
14. B
15. B
16. B
17. B
18. C
19. B
20. B

## 4.13 संदर्भ-ग्रंथ एवं संदर्भ-सामग्री


- Chatterjee, Partha. *The Nation and Its Fragments: Colonial and Postcolonial Histories*. Princeton University Press, 1993.
- Rajadhyaksha, Ashish, and Paul Willemen. *Encyclopaedia of Indian Cinema*. Oxford University Press, 1999.
- Orsini, Francesca. *The Hindi Public Sphere 1920–1940: Language and Literature in the Age of Nationalism*. Oxford University Press, 2002.
- Vasudevan, Ravi. *Making Meaning in Indian Cinema*. Oxford University Press, 2000.

- Guha, Ramachandra. *India After Gandhi: The History of the World's Largest Democracy*. HarperCollins, 2007.
- Dwyer, Rachel. *Bollywood's India: Hindi Cinema as a Guide to Contemporary India*. Reaktion Books, 2014.
- Das Gupta, Chidananda. *The Painted Veil: Indian Cinema and the Public Sphere*. Penguin Books, 1991.
- Sen, Amartya. *The Argumentative Indian: Writings on Indian History, Culture, and Identity*. Penguin Books, 2005.

**NOTES**

**NOTES**

**NOTES**

20CUS01669